प्रथम अध्याय

भूमिका (प्रस्तावना)

==========

प्रस्तावना :

एक विषय के रूप में लोक प्रशसन की विकास यात्रा, अमेरिका से प्रारम्भ हुई । व्यवहारिक रूप में लोक प्रशासन प्रत्येक समय में तथा प्रत्येक स्थान पर किसी-न-किसी स्वरूप में अवश्य विद्यमान रहा है । **जहाँ तक लोक प्रशासन शब्द के प्रचलन का प्रश्न है, वह 17वीं शताब्दी में यूरोप में शुरू हुआ ।** उस समय के निरंकुश राजाओं के सार्वजनिक मामलों के प्रशासन को राजा के घरेलू मामलों के कार्यों के प्रबन्ध से पृथक् करने के सन्दर्भ में लोक प्रशासन शब्द काम में लिया गया । यह वह समय था, जब चर्च को राज्य से पृथक् किया गया और सरकार को निश्चित क्षेत्र के भीतर सभी दूसरी सामाजिक संस्थाओं पर अध्यारोपित किया गया था । शासन के लक्ष्यों तथा जनसाधारण की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु, प्रशासनिक संरचनाएँ तथा व्यवस्थाएँ कार्य करती हैं । कबिलाई, राजशाही, सामंतशाही तथा तानाशाही शासन व्यवस्थाओं से लेकर आधुनिक लोक कल्याणकारी एवं प्रजातांत्रिक लोकप्रिय शासन प्रणालियों तक प्रशासनिक तंत्र तथा इसके कार्मिक किसी-न-किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहे हैं क्योंकि बिना प्रशासनिक तंत्र के शान व्यवस्था को संचालित करना असम्भव है । शिक्षा, विज्ञान, जनसंख्या तथा मानव जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों में बढ़ती जटिलता एवं विशेषज्ञता ने

लोक प्रशासन को अविकल्पनीय बना दिया है । मानव की प्रत्येक भौतिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति लोक प्रशासन द्वारा होती है । इसी कारण आज के राज्य को प्रशासकीय राज्य भी कहा जाता है । मानव समाज में शांति, व्यवस्था, कल्याण, विकास तथा सृजनात्मक कार्यों का दायित्व लोक प्रशासन के कंधों पर है । इसी कारण लोक प्रशासन 'आधुनिक शासन व्यवस्था का केन्द्रबिन्दु' बन चुका है । आधुनिक सभ्यता के हृदय के रूप में कार्यरत लोक प्रशासन के महत्त्व को रेखांकित करते हुए प्रो॰ डब्ल्यू बी डोनहैम कहते हैं-"यदि आधुनिक मानव सभ्यता का पतन हुआ तो ऐसा मुख्यतया प्रशासन की विफलता के कारण होगा ।"[1]

'लोक प्रशासन' प्रशासन का वह भाग है जो एक विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करता है । लोक प्रशासन राजनीतिक निर्णयों को कार्यरूप में परिणत करने का एक साधन है । कार्य पूरा करने के लिए योजना बनाना, उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्माण करना, निर्णय लेना, जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए विधायिका एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ कार्य करना, संगठनों का निर्माण एवं पुनर्निमाण करना, कर्मचारियों को निर्देश देना, नेतृत्व प्रदान करना, कार्य करने की विधियां खोजना, सरकारी अधिकारियों द्वारा किये गये कार्य और उन पर नियन्त्रण रखना, आदि सभी लोक प्रशासन ही है । यह सरकार के कार्य का वह भाग है जिसके द्वारा सरकार के उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति होती है ।

---

1. कटारिया, सुरेन्द्र, लोक प्रशासन-सिद्धान्त एवं व्यवहार, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2016, पृ॰ 3

भूमण्डलीकरण और उदारीकरण ने लोक प्रशासन की संरचना और भूमिका को विशेष रूप से प्रभावित किया है । निजीकरण, 'डाउन साइजिंग', प्रक्रियात्मक सुधार जैसी बाध्यताओं ने लोक प्रशासन की भूमिका को चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है और 'नवीन लोक प्रबन्ध', 'उद्यमी शासन', उत्तम अभिशासन' जैसी अवधारणाओं ने लोक प्रशासन की क्लासिकी मान्यताओं को चुनौती देते हुए सामाजिक न्याय पर आधारित इसके अभिप्राय को पुनः निर्धारण करने के लिए अभिप्रेरित किया है ।[2]

प्रशासनशास्त्र एक विकासशील विज्ञान का क्षेत्र है, उसके ऐतिहासिक विकास के विवेचन की आवश्यकता नहीं है । वह तो मानव संस्कारों से जुड़ा हुआ है, अतएव गतिशील है । उसे सुव्यवस्थित विज्ञान और कला के रूप में देखा जाता है; वह शैक्षिक पठन-पाठन का एक विषय है और साथ ही एक पेशे की तैयारी का आधार स्तम्भ है । उसका दर्शन और स्तर अन्य विषयों जैसे राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों के जो अंग-प्रत्यंग हैं, उनके आपसी सम्बन्धों से निखरता है । इसलिए आज व्यक्ति, समाज और राज्य के सरोकारों से सम्बन्धित होने के कारण प्रशासन एकांगी नहीं हो सकता है । चाहे पेशे के रूप में देखें, चाहे शैक्षणिक पठन-पाठन के रूप में, लोक प्रशासन अन्तर-अनुशासनात्मक एवं बहुविषयी हो जाता है ।

लोक प्रशासन के कार्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में लूथर गुलिक ने जिस मत को प्रतिपादित किया है उसे 'पोस्डकोर्ब' कहा जाता हैं । लूथर

---

2. चक्रवर्ती, विद्युत और चन्द्र प्रकाश, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन व ए ग्लोबलाइजिंग वर्ल्ड, सेज पब्लिकेशन्ज, नई दिल्ली, 2015, पृ॰ 2

गुलिक से पहले उर्विक, हेनरी फेयोल, इत्यादि विद्वानों ने भी 'पोस्टकोर्ब' दृष्टिकोण अपनाया था, परन्तु इन विचारों को सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय गुलिक को ही जाता है । 'पोस्टकोर्ब' शब्द अंग्रेजी के सात शब्दों के प्रथम अक्षरों को मिलाकर बनाया गया है ।[3] वे शब्द इस प्रकार हैं :

P- Planning	=	योजना बनाना
O-Organizing	=	संगठन बनाना
S-Staffing	=	कर्मचारियों की व्यवस्था करना
D-Directing	=	निर्देशन करना
CO-Co-ordination	=	समन्वय करना
R-Reporting	=	रपट देना
B-Budgeting	=	बजट तैयार करना

1.1 केन्द्रीय प्रशासन :

भारत संघीय शासन व्यवस्था अपनाने वाला देश है जहाँ राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्र या संघ सरकार तथा राज्यों में राजय सरकारें कार्यरत हैं । दोनों ही स्तरों पर संसदीय लोकतंत्र तथा शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्तों को स्वीकार गया है । शासन के तीनों अंगों तथा - कार्यपालिका, व्यवस्थापिका (विधायिका) तथा न्यायपालिका के मध्य 'नियंत्रण तथा संतुलन' का नियम प्रवर्तित है अर्थात् शासन या सरकार के तीनों अंग जहाँ एक-दूसरे में स्वतंत्र हैं वहीं परस्पर नियंत्रणकर्ता की भूमिका भी

---

3. कटादिया, सुरेन्द्र, लोक प्रशासन-सिद्धान्त एवं व्यवहार, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2016, पृ॰ 8

निर्वाहित करते हैं । चूंकि भारत में राजनीतिक कार्यपालिका (मंत्रिपरिषद्), व्यवस्थापिका का अभिन्न हिस्सा होती है अतः सरकार की वास्तविक शक्तियाँ जिनमें विधि-निर्माण भी सम्मिलित है, कार्यपालिका के नियंत्रण में दिखायी देती है । इसलिए कहा जाता है कि - "भारत में व्यवस्थापिका की शक्तियों तथा भूमिका का ह्रास हो रहा है और कार्यपालिका के निरंकुश शासन का दायरा विस्तृत होता जा रहा है ।" यद्यपि भारत में अमेरिका की भाँति पूर्णतया 'शक्ति-पृथक्करण' का सिद्धान्त लागू नहीं होता है तथापि कार्यपालिका पर न्यायपालिका का पर्याप्त नियंत्रण व्याप्त है।

भारत का संविधान शासन के कार्यों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए सरकार के विषयों को संघ, राज्य तथा समवर्ती सूचियों में विभक्त करता है । राज्य सरकारें अपने विषयों पर राज्य विधानमण्डलों के माध्यम से नीति तथा कानून निर्मित करती है जबकि संघ तथा समवर्ती सूची (अधिकतर) के अन्तर्गत वर्णित विषयों पर केन्द्र सरकार संसद के द्वारा कानून बनाती है । कानून या विधि-निर्माण का कार्य जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि करते हैं जो व्यवस्थापिका या विधायिका (Legislature) कहलाते हैं ।[4] इन कानूनों की क्रियान्विति को सुनिश्चित करने वाला अंग कार्यपालिका (Executive) कहलाता है ।

---

4. कटारिया, सुरेन्द्र, भारत में लोक प्रशासन, आर० बी० एन० ए० पब्लिशर्स, जयपुर, 2016, पृ० 32

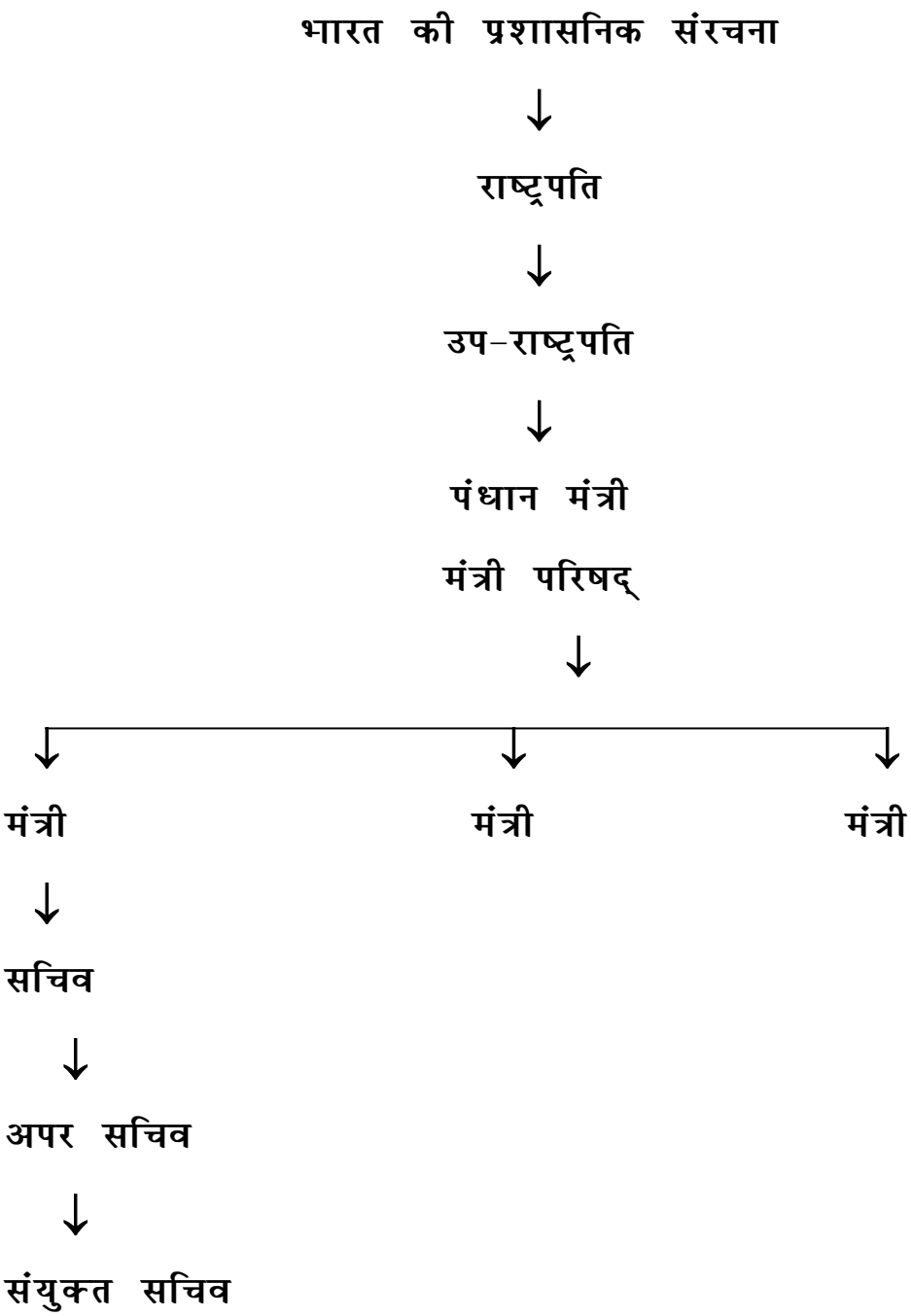
भारत की प्रशासनिक संरचना
राष्ट्रपति
उप–राष्ट्रपति
पंधान मंत्री
मंत्री परिषद्
मंत्री
मंत्री
मंत्री
सचिव
अपर सचिव
संयुक्त सचिव

1.2 राज्य प्रशासन :

राज्य प्रशासन जहाँ तक 'प्रशासन' शब्द का प्रश्न है यह अंग्रेजी के 'एडमिनिस्ट्रेशन' का पर्याय है जिसका अर्थ होता है "काम करवाना" या "कार्य सम्पादन की व्यवस्था करना ।" इस प्रकार राज्य प्रशासन से तात्पर्य किसी प्रान्त की प्रशासनिक संरचना एवं व्यवस्था से है । राज्य प्रशासन का कार्य मुख्यत: संविधान में वर्णित (भारत के संदर्भ में) राज्य सूची के विषयों के क्रम में नीति एवं विधि बनाना एवं लोक कल्याण तथा व्यवस्था हेतु उन्हें कार्यान्वित करना है । यद्यपि राज्य प्रशासन का कार्य-क्षेत्र भी लोक प्रशासन के समान विस्तृत है; किन्तु विशेषत: यह राज्य (प्रान्त) के लिए निर्धारित भौगोलिक एवं राजनीतिक सीमाओं से आबद्ध है । सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि -

(i) भारत में राज्य प्रशासन का तात्पर्य प्रान्तीय सरकार से है ।

(ii) यह समग्र लोक प्रशासन का एक विशिष्ट स्वरूप, क्षेत्र या अंग है ।

(iii) राज्य सरकारें अपने कार्य-क्षेत्र में अधिकांशत: स्वतंत्रता प्राप्त हैं, अत: सभी राज्यों में प्रशासनिक संरचना विविधतायुक्त है तथापि उसमें मूलभूत कार्यप्रणाली एक जैसी है ।

(iv) राज्य प्रशासन से तात्पर्य विशिष्ट भू-भाग तथा पृथक् शासन व्यवस्था वाले उस क्षेत्रीय प्रशासन से है जो अपने कार्य स्वतंत्रतापूर्वक करता है । भारत में ये कार्य राज्य सूची के

हैं तथापि केन्द्र द्वारा निर्देश मिलने पर अन्य सूचियों से सम्बन्धित भी हो सकते हैं ।[5]

1.3 जिला प्रशासन

भारत में जिला प्रशासन का सम्पूर्ण ढांचा एक पदसोपान युक्त व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है । सामान्यत: इसके स्तर तीन तथा कभी-कभी दो या चार भी होते हैं । वैसे अधिकांश राज्यों में जिले के तीन स्तर मिलते हैं । प्रथम, जिला-इसका मुख्यालय जिले के प्रमुख नगर में होता है । दूसरे, जिले के किसी अन्य स्थान पर उपखण्ड का मुख्यालय और तीसरा, तहसील कार्यालय है । ये तीनों स्तर जिले में सामान्य प्रशासन की दृष्टि से बनाए जाते हैं, किन्तु विकास कार्यों के लिए अधिकतर राज्यों में प्रशासन की इकाई 'ब्लाक' है ।

जिला प्रशासन के तीनों चरण स्तरों पर अधिकारी वर्ग भी उल्लेखनीय है । प्रथम स्तर का क्षेत्राधिकार सम्पूर्ण जिला है तथा इसके अधिकारी हैं कलक्टर, जिला कृषि अधिकारी, जिला परिषद् के अध्यक्ष, स्वास्थ्य अधिकारी, आदि । बड़े जिलों में दो मध्यवर्ती स्तर पाए जाते हैं जबकि छोटे जिलों में यह स्तर एक ही होता है । इस स्तर पर उपखण्ड अधिकारी या उपखण्ड दण्डनायक होता है । उपखण्ड अधिकारी सामान्रूज्ञ प्रशासन होता है । वह तहसीलदार और कलक्टर के मध्य राजस्वमामलों में तथा कलक्टर और स्थानीय पुलिस अधिकारी के मध्य कानून और

---

5. कटारिया, सुरेन्द्र, राज्य प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2001, पृ० 4

शान्ति के मामलों में एक कड़ी का कार्य करता है ।[6] उपखण्ड को तहसीलों में बांटा जाता है । इस स्तर के प्रमुख अधिकारी तहसीलदार, विकास अधिकारी, आदि उल्लेखनीय हैं । तहसील का मुख्य अधिकारी तहसीलदार कहलाता है और वह अधीनस्थ सेवा का सदस्य होता है । तहसीलदार को उसके कार्यों में नायब या उप-तहसीलदार, कानूनगो एवं पटवारी सहायता देते हैं । समस्त राजस्व कार्यो तथा सरकार द्वारा सौंपे गए अन्य सम्बन्धित कार्यों के लिए तहसीलदार कलक्टर के माध्यम से राज्य सरकार के प्रति उत्तरदायी होता है । निम्न स्तर पर गांव में ग्राम पंचायत मुखिया, पटवारी, ग्राम सहायक, आदि आते हैं ।

---

6. फाड़िया, बी० एल०, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्ज, आगरा, 2008, पृ० 974

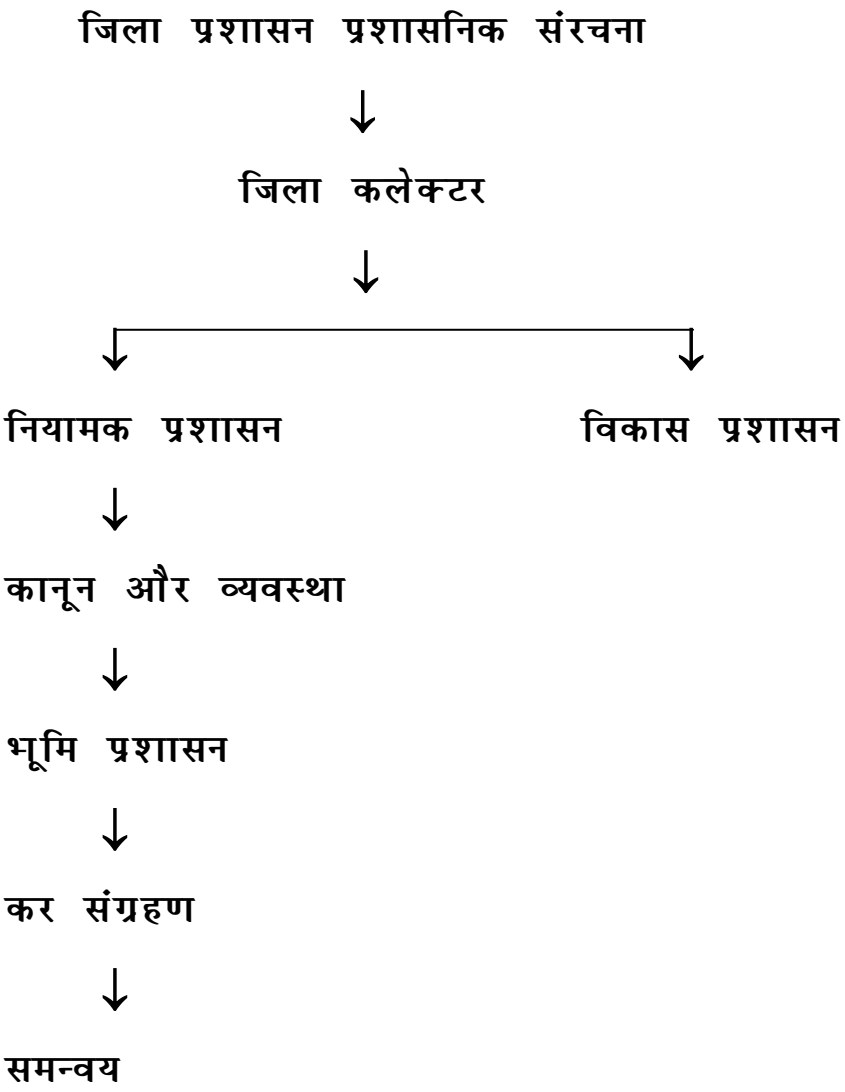
जिला प्रशासन प्रशासनिक संरचना
जिला कलेक्टर
नियामक प्रशासन
विकास प्रशासन
कानून और व्यवस्था
भूमि प्रशासन
कर संग्रहण
समन्वय

1.4 भारतीय प्रशासन का इतिहास

भारत एक बहुत प्राचीन देश है । हजारों वर्षों के इतिहास में आए अनेक उतार-चढ़ाव तथा बदलावों के बावजूद, भारत की गौरवपूर्ण सभ्यता तथा सनातन संस्कृति के मूल तत्व आज भी विद्यमान हैं । इस देश पर शताब्दियों तक अलग-अलग कई देशों से आए हुए लोगों ने शासन-प्रशासन किया और लगभग सभी विदेशी शासकों ने अपने-अपने समयों में यहां उनके अपने-अपने देशों की प्रशासनिक प्रणालियों को लागू करने के प्रयास किये थे जिनके चिन्ह आज भी मौजूद हैं । भारत में उपलब्ध आज का प्रशासन और उसकी प्रणालियां ऐसे ही ऐतिहासिक प्रयोगों की पहचान है । वर्तमान भारत की जिला प्रशासन प्रणाली और जिला प्रशासन के मुखिया जिला कलेक्टर की भूमिका का अध्ययन करने के लिए भारतीय प्रशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना उचित होगा।[7]

घुमन्तु जीवन छोड़कर सभ्यता की ओर अग्रसर होते हुए मनुष्य ने जो पहला निवास बनाया था, वह ग्राम ही था । ऐसी मान्यता है कि भारतवर्ष में ईसा से लगभग 6000 वर्ष पूर्व एक उन्नत सभ्यता स्थापित हो चुकी थी । ग्रामीण प्रशासन अर्थात् ग्राम व्यवस्था के रूप में पंचायत का उल्लेख सबसे पहले भारत के प्राचीन साहित्य में

---

7. दुबे, लीला, गुलाम भारत एवं आजाद भारत का जिला कलेक्टर, एकेडमी प्रेस, इलाहाबाद, 2008, पृ॰ 27

ही किया गया था । इस साहित्य से तत्कालीन ग्रामीण प्रशासन की व्यवस्था का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है ।

ईसा से 3000 से 4000 वर्ष पूर्व भारत में सिन्धु घाटी की एक महान सभ्यता का निवास सिद्ध हो चुका है । यह नगरीय सभ्यता थी और इसके अध्ययनसे तत्कालीन नगरीय प्रशासन का ज्ञान प्राप्त होता है । इस जानकारी के आधार पर आज की ग्रामीण पंचायत व्यवस्था और नगरीय प्रशासन व्यवस्था से उसकी तुलना की जा सकती है । भारतवासी इस बात का गर्व कर सकते हैं कि आज के विकसित राष्ट्र भले ही उनकी नगरीय स्व-शासन प्रणाली की उत्कृष्टता पर गर्व करते हों, भारत में भी ग्राम और नगरीय शासन प्रणाली इन विकसित राष्ट्र के अभ्युदय काल के हजारों वर्ष पूर्व विकसित हो चुकी थी।

वैदिक काल का प्रशासन

प्राचीन भारत के इतिहास का सबसे महिमामय काल वैदिक सभ्यता का युग कहा जाता है । यह सभ्यता आर्यों द्वारा विकसित की गई सभ्यता मानी जाती है । अब तक के इतिहासकार और विशेषकर पाश्चात्य इतिहासज्ञ, यह मानते आए हैं कि आर्य मध्य एशिया से हिन्दुस्तान में आए थे । पिछले कुछ वर्षों से एक बड़ा गर्व इस बात को मानने से इंकार कर रहा है कि आर्य कहीं बाहर से आए थे । आर्यों द्वारा विकसित संस्कृति को सामान्य रूप से हिन्दू संस्कृति कहा जाता है जो ईसा से लगभग 1500 से 600 वर्ष

पूर्व तक सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैली हुई थी ।[8] यह वैदिक संस्कृति सभी दृष्टियों से एक महान संस्कृति मानी गयी है । इसी काल में मर्यादा पुरुषोत्तम एवं महान आदर्शवादी राजाराम के उत्कृष्ट प्रशासन का उल्लेख किया जाता है । वास्तव में महात्मा गांधी ने आजादी की लड़ाई के दौरान और स्वतंत्रता प्राप्ति पर, राष्ट्र को यही आश्वासन दिया था कि भारतवर्ष में रामराज्य की स्थापना की जाएगी।

इस संदर्भ में वैदिक युग के रामराज्य के प्रशासन के आदर्शों का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है । वैदिक युग की कुछ प्रशासनिक विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है :

1. आर्यों के राजनीति संगठन में सबसे छोटी इकाई कुल (परिवार) होती थी और कुल का नेता "कुलुप" कहलाता था । कई कुलों के समूह से बना गांव होता था जो राज्य के ढांचे की सबसे छोटी राजनैतिक/प्रशासनिक इकाई माना जाता था । गांव के मुखिया को/शासक को, "ग्रामिणी/ग्रामिक" कहा जाता था । "ग्रामिणी" राजा द्वारा नियुक्त होने पर भी ग्रामवृद्धों की सहमति से कार्य करता था। वह कार्यपालिका सत्ता होते हुए भी परम्परागत व्यवहारों के विपरीत कार्य नहीं करता था अन्यथा ग्रामवृद्धों द्वारा ठीक किया जा सकता था । ग्राम, समाज की इकाई होने के कारण राजनीतिक संगठन की

---

8. वही

इकाई भी ग्राम ही था । ग्राम अपने में पूरा संसार ही था ।[9] ग्रामीण जन-पंचायत के माध्यम से तथा पूरे गांव के सामूहिक निर्णय से, न्याय, ईमानदारी और कार्यकुशलता के साथ कार्य संचालन करते थे और शासन की ओर से इन ग्राम-राज्यों को अपनी-अपनी व्यवस्था करने के लिए पूरी शक्ति एवं सहयोग प्रदान किया जाता था ।

2. ग्राम से ऊपर क्रमशः दस, बीस, सौ और एक हजार ग्रामों के समूह बनाकर प्रशासनिक क्षेत्र अथवा इकाईयां निर्धारित की गई थीं । एक हजार ग्रामों को मिलाकर जो इकाई निर्धारित की गई थी, वह वर्तमान समय में जिले के समान होती थी । पूर्व वैदिक काल में इसे 'विशप' (जिला) और इसके स्वामी को 'विश्वपति' कहा जाता था - उत्तर वैदिक काल में इस शासक को 'सहस्रपति' कहा जाता था । महाभारत में शांति पर्व तथा मनुस्मृति में एवं विष्णुस्मृति में इसका विशद् वर्णन मिलता है । इस प्रकार 'जिला' एवं जिला-दंडाधिकारी, वैदिक काल में ही प्रशासन की इकाई एवं मुखिया के रूप में अस्तित्व में आ गये थे । यूनान, यूरोप और रोम के पहले ही, भारतवर्ष में गणराज्यों का आविर्भाव हो चुका था ।

मौर्य एवं गुप्तकाल में जिला प्रशासन

वैदिक काल के बाद भारतीय प्रशासनिक इतिहास में ईसा पूर्व 322 से ईस्वी सन् 600 तक का काल, मौर्य काल एवं गुप्त काल कहलाता है । ये दोनों काल भारतीय इतिहास की महान उपलब्धियों

---

9. वही

के स्वर्ण काल माने जाते हैं । मौर्य काल के सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य भारत के मुक्तिदाता और भारत के प्रथम सम्राट कहे जाते हैं । इसी काल में एक बार फिर भारतवर्ष एक महान शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभरा था । मेगास्थनीज के "इंडिका", कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" तथा विशाखादत्त के "मुद्राराक्षस" में मौर्यकालीन प्रशासन की विकसित प्रणाली का विस्तृत विवरण मिलता है । इसके बाद सम्राट अशोक ने लगभग पूरे हिन्दूस्तान पर 40 वर्षों तक राज्य किया था और उसे विश्व के प्रथम कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने का श्रेय प्राप्त हुआ था ।[10] इसी मौर्य काल में आज की "जिला" कहलाने वाली प्रशासनिक इकाई का जन्म हुआ था, जिसे "स्थानुजा" कहा जाता था और उसे अधिकारी को "स्थानिक" अथवा "राजुका" कहा जाता था जो आज के जिला दंडाधिकारी के ही समान अधिकारी होता था । "राजुका" कानून और व्यवस्था के साथ ही लगान वसूली का कार्य करते थे और जिलों में राजा के प्रतिनिधि के रूप में शासन प्रबंध करते थे । इस जानकारी के आधार पर कहा जा सकता है कि आज जो जिले और जिला कलेक्टर विद्यमान हैं, उनकी स्थापना न ही अंग्रेजों ने की थी और न ही मुगलों ने, बल्कि भारतीय सम्राटों ने ही मौर्य काल में कर दी थी ।

---

10. कटारिया, सुरेन्द्र, लोक प्रशासन-सिद्धान्त एवं व्यवहार, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005, पृ॰ 4

मौर्य काल में ग्राम से लेकर केन्द्र तक प्रशासनिक इकाईयां स्थापित थी । गांव का प्रशासन ग्राम-सभा चलाती थी जिसके मुखिया को "ग्रामिक" कहा जाता था और जिसकी नियुक्ति शासन द्वारा की जाती थी । ग्राम-सभा के सदस्य ग्राम के वृद्ध लोग ही होते थे जो गांव वालों द्वारा चुने जाते थे । इन ग्राम भाओं के काम गांव के झगड़े निपटाना, अपराधियों को दंडित करना, सड़के, पुल आदि बनवाना था । ग्राम-सभाओं को न्यायिक अधिकार भी उपलब्ध थे । 100 गांवों को मिलकार "एक संग्रहण" बनता था । 200 गांवों के समूह को "संगविक" कहा जाता था । 400 गांवों के समूह को "शृंगमुख" और 800 गांवों के समूह को "महाग्राम" अथवा "स्थानुजा" कहते थे ।[11] इसके ऊपर प्रांत थे और प्रांतों के ऊपर केन्द्रीय शासन स्थापित था ।

गुप्त काल, जिसे भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है, में भी प्रशासनिक व्यवस्था लगभग मौर्य काल जैसी ही रही । पूरा देश प्रान्तों में विभक्त था जिन्हें "भुक्ति" के नाम से पुकारा जाता था । प्रान्तों को जिलों में बांटा गया था जिन्हें "विषयों" अर्थात जिलों को भी विभाजित कर उसके नीचे वर्तमान युग की तहसील या ताल्लुका के समान प्रशासनिक इकाई बनाई गई थी जिसे "पाठक" कहा जाता था ।

---

11. शर्मा, जयभगवान, हिस्ट्री एण्ड प्रोब्लमस ऑफ डिस्ट्रिक्ट एसमिविस्ट्रेशन इन इण्डिया, सरूप एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2003, पृ॰ 72

मौर्य काल एवं गुप्त काल के बाद भारतीय इतिहास में प्रशासनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण युग मुगल काल ही कहा जा सकता है। इस युग में प्रशासनिक सुधारों की दृष्टि से शेरशाह सूरी और सम्राट अकबर के ही योगदान उल्लेखनीय रहे हैं । चूंकि अंग्रेजों ने भारतवर्ष में अपनी शासन प्रणाली स्थापित करने के पूर्व मुगलों की प्रशासन व्यवस्था को ही आधार बनाया था, इसलिए उचित होगा कि मुगल प्रशासन प्रणाली के बारे में भी कुछ विस्तारपूर्वक जानकारी यहां दी जाएं ।

मुगल कालीन प्रशासन

मुगल काल में भी राजा की स्थिति में कोई अधिक परिवर्तन नहीं हुआ । राजा या बादशाह अब भी केवल राज्य प्रधान ही नहीं था, वरन् शासन-प्रधान भी होता था । बादशाह पूर्ववत् दीवानी, न्यायिक, कार्यपालिका तथा सेना, सभी क्षेत्रों में सर्वाधिकार सम्पन्न सत्ता था ।[12] समस्त अधिकारी तंत्र, बादशाहों के द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों/आदेशों के तहत व्यक्तिगत सेवकों की तरह कार्य करते थे।

इतिहासकार यदुनाथ सरकार के कथनानुसार "मुगल प्रशासन भारतीय पार्श्वभूमि पर परसियन-अरबियन प्रणाली की स्थापना जैसा था ।" दूसरे शब्दों में हिन्दुस्तान में जो प्रशासन प्रणाली स्थापित की गई थी वह अधिकांशत: मध्य-पूर्व के लोगों द्वारा विकसित की गई प्रणाली पर आधारित थी लेकिन इसके साथ ही इसमें हिन्दू

---

12. दुबअे लीला, ***पूर्व उद्धृत***, पृ० 35

साम्राज्यों के दौरान विकसित हुई परम्पराओं का ध्यान भी रखा गया था ।

प्रशासन के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का सर्वप्रथम प्रतिपादन और स्थापना "पठान" बादशाह शेरशाह द्वारा की गई थी । सर्वप्रथम शेरशाह ने ही हिन्दुस्तान में तब प्रचलित प्रान्तीय शासन पद्धति से आगे जाकर साम्राज्य को अनेक जिलों (सरकार) और प्रत्येक "सरकार" को अनेक "परगनों" में विभाजित किया था । इस प्रकार सरकार (जिला), मुगल काल में फिर से प्रशासन की इकाई के रूप में प्रतिष्ठित हुआ था । शेरशाह के बाद बादशाह अकबर ने शेरशाह की प्रशासन प्रणाली में संशोधन किया ।[13] उसने शेरशाह की जिला प्रशासन की व्यवस्था कायम रखते हुए प्रान्तीय शासन भी लागू किया। अकबर के शासन काल की प्रशासनिक स्थिति निम्नानुसार थी:

भौगोलिक क्षेत्र	**सत्ता प्रमुख**
देश	बादशाह, सम्राट
प्रान्त (सूबा)	सूबेदार, सिपहसालार
सरकार (जिला)	फौजदार
परगना या महल (अनुभाग)	सिकदार, जमींदार, देशमुख, कानूनगो
सर्किल, जेल या चकला	जेलदार, तहसीलदार

13. शर्मा, जय भगवान, हिस्ट्री एण्ड प्राब्लमस ऑफ डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्टेशन इन इण्डिया-3, नई दिल्ली, 2003, पृ॰ 108

गांव	1. पटेल, मुकद्दम, खोत, चौधरी, मालगुजार
	2. पटवारी

मुगल शासन केन्द्र, प्रांत, सरकार, परगनों तक, एक सक्षम सचिवालयीन प्रणाली पर आधारित था । इससे यह ज्ञात होता है कि मुगल नौकरशाही, आधुनिक प्रशासन तंत्र जिला कलेक्टर, कल और कल जैसे ही थी । इतिहासज्ञ बेनी प्रसाद के अनुसार यह एक "कल्चर स्टेट" और हरून हसन जैसे सम्राट अशोक जैसा "पैटरनल रूल" मानते हैं ।

अंग्रेजों का प्रशासन

मुगलों के शासन काल में और उसके अंतिम दिनों में भारत में कई विदेशी लोग आए । उनका आगमन प्रथमतः हिन्दुस्तान में व्यापार करने के उद्देश्य से हुआ था । अंग्रेजों ने व्यापार शुरु करके हिन्दुस्तान पर क्रमशः अपना आधिपत्य कायम कर लिया था । अंग्रेजों का भारत से संबंध सन् 1600 से 1947 तक रहा । लगभग 350 वर्षों की इस लम्बी अवधि की प्रशासनिक गतिविधियों को निम्न चार चरणों में विभाजित कर देखा जा सकता है[14] :

प्रथम चरण (सन् 1600 से 1757 तक) – भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापारी रूप

---

14. सदाशिवन, एस॰ एन॰, "डिस्ट्रिक्ट लेबल कोर्डीनेशन इन इण्डिया" एस एव सदाशिवन, (सं॰), डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन, आई॰ आई॰ पी॰ ए॰, नई दिल्ली, 1998, पृ॰ 4

द्वितीय चरण (सन् 1753 से 1833 तक) - भारत में कंपनी का व्यापारी एवं शासक रूप

तृतीय चरण (सन् 1833 से 1857 तक) - भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासक रूप

चतुर्थ चरण (सन् 1858 से 1947 तक) - भारत में ब्रिटिश ताज का शासन ।

भारत वर्ष में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन की नींव 1757 में प्लासी के युद्ध में विजय के समय पड़ गई थी । सन् 1765 में "ईलाहाबाद की संधि" के साथ ही राबर्ट क्लाइव को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा तीन प्रांतों की दीवानी अर्थात् सरकारी कर अथवा टैक्स वसूल करने का अधिकार प्राप्त हो गये थे और यहीं से कम्पनी का शासक रूप शुरु हो गया था । सन् 1765 से 1767 के दो वर्ष राबर्ट क्लाइव के "दोहरे शासन" के वर्ष रहे जिनमें दीवानी शासन अंग्रेजों के हाथ रहा और निजामत अर्थात सैन्य शक्ति, शांति व्यवस्था तथा फौजदारी न्याय, बंगाल के नवाब के पास था । इस अवधि में न्याय की व्यवस्था में भ्रष्टाचार, उद्योग एवं कृषि की दुर्गति और भारतीय नागरिकों के शोषण से न्याय और व्यवस्था की स्थिति बहुत ही गिर गई थी ।

अंग्रेज कम्पनी के दीवानी प्रशासन की, इन वर्षों की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि प्रबंधकों की (सुपरवाइजर्स) की नियुक्ति कही जा सकती है । क्लाइव के बाद आए लार्ड हेरी वेरेलेस्ट ने लगान

वसूल करने का उत्तरदायित्व सीधे अपने ऊपर लेकर सन् 1769 में कम्पनी के ही गैर-सैनिक सिविल सेवकों में से चयन करके, प्रबंधकों की नियुक्ति की थी । इसी के साथ 1770 में "लगान समिति" भी नियुक्त की गई थी । ये प्रबंधक ही बाद में चलकर कलेक्टर बने थे ।[15] इस दृष्टि से प्रबंधकों की नियुक्ति का यह वर्ष 1769, भारतीय प्रशासनिक इतिहास में अंग्रेजी कम्पनी के काल की उल्लेखनीय गतिविधि कही जा सकती है ।

इसके बाद लार्ड वारेन हेस्टिंग्स (1772-1785) का प्रशासन काल उल्लेखनीय रहा क्योंकि हेंस्टिंग्स ने "द्वैध शासन" प्रणाली समाप्त कर कम्पनी को पूर्ण शासक बना दिया था और भ्रष्ट तथा अक्षम प्रबंधक व्यवस्था को हटाकर उनके स्थान पर अंग्रेज कलेक्टर प्रत्येक जिले में नियुक्त किये थे ।

वारेन हेस्टिंग्स ने बंगाल के जमींदारों से उनके राजस्व, दीवानी एवं फौजदारी न्याय के अधिकार छुड़कार प्रत्येक जिले में एक-एक दीवानी एवं फौजदारी अदालतें स्थापित की थी तथा इन अदालतों का एवं पुलिस का प्रभार कलेक्टरों को ही सौंपा गया था ।[16] इस प्रकार 14 मई, 1772 का जिला कलेक्टर के नेतृत्व वाली जिला प्रशासन प्रणाली का ऐतिहासिक जन्म हुआ था । रेग्यूलेटिंग ऐक्ट सन् 1773 के पारित होने से इसी वर्ष में हिन्दुस्तान में बंगाल,

---

15. द्वितीय प्रशासनिक आधार आयोग, राज्य और जिला प्रशासन, पंद्रहवी रिर्पोट, अप्रैल, 2009, भारत सरकार, पृ॰ 70
16. वही

मद्रास और बम्बई की तीन प्रेसीडेंसियों को एक कर उनके शासन का अधिकार एवं गवर्नर जनरल को दिया जाकर पहली बार हिन्दुस्तान में कम्पनी की केन्द्रीय अथवा सुप्रीम गवर्नमेंट स्थापित की गई थी । प्रशासकों की नियुक्ति में सुधार लाकर उन्हें निजी व्यापार करने से रोका गया था और सिविल सेवकों पर आचरण से संबंधित कुछ नियम लागू किये गये थे ।

लार्ड कार्न वालेस की जिला कलेक्टर-पद्धति

जिला कलेक्टर वाली प्रशासन-प्रणाली के स्वरूप की दृष्टि से लार्ड कार्न वालेस (1786 से 1793) का काल बहुत प्रसिद्ध रहा । कार्न वालेस शक्तियों के विभाजन के सिद्धान्त का पक्षधर था । उसने जिला कलेक्टर से न्यायिक अधिकार हटाकर कार्यपालिका को न्यायपालिका से स्वतंत्र करने की चेष्टा की थी । उसने योग्यता के आधार पर निष्पक्षता से भर्ती की प्रथा भी शुरु की थी । इसके बाद 1833 में 'दि चार्टर एक्ट ऑफ 1833' पारित हुआ जिसके बाद कंपनी ने व्यापारी की भूमिका पूरी तरह से त्याग दी थी और तब से केवल शासक की भूमिका में आ गई थी ।[17] लार्ड डलहौजी (1848-1856) ने कार्न वालेस के शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को अस्वीकार कर फिर से जिला कलेक्टर में न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं पुलिस नियंत्रण के सभी अधिकार केन्द्रित कर उसे कम्पनी के शासन का प्रभावशील जिला प्रतिनिधि बना दिया था ।

---

17. दुबे, लीला और दुबे, एस० पी०, ***पूर्व उद्धृत***, पृ० 18

सन् 1853 में पारित चार्टर एक्ट के द्वारा सिविल सेवाओं में खुली प्रतियोगिता से भर्ती की प्रक्रिया शुरु की गई थी जो जिला कलेक्टर बनने वाले अधिकारियों के कौशल और स्तर को बढ़ाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था ।

सन् 1857 की आजादी की लड़ाई ने भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन की मृत्यु की घंटी बजा दी थी । नवंबर 1858 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में अधिनियम पारित हुआ और भारत का शासन ब्रिटिश ताज के अधीन हो गया । सन् 1858 से लेकर सन् 1905 तक के आसपास का समय ब्रिटिश ताज के अधीन, भारत में ब्रिटिश प्रशासन की गतिविधियों के विस्तार और प्रशासन के संहिताकरण तथा नियमितीकरण का काल कहा जा सकता है । यह भी कहा जाता है कि गदर के बाद 50 वर्षों का यह समय अपेक्षाकृत शांति का समय रहा । कम्पनी से ब्रिटिश ताज के पास भारत का शासन आने पर जो भी वैधानिक संशोधन/परिवर्तन हुए हों लेकिन यह कहा जा सकता है कि प्रशासनिक नीतियों में कोई विशेष अंतरनहीं आया था । सन् 1772 से लगातार 1905 तक अंग्रेजों की प्रशासन प्रणाली एक सुदीर्घ प्रशासन परम्परा के रूप में बनी रही थी ।[18]

1858 से 1905 के बीच ब्रिटिश शासन के प्रशासनिक सुधार

इस अवधि के महत्वपूर्ण प्रशासनिक सुधार निम्न थे

---

18. वही

- न्याय को निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित करने और न्याय की प्रक्रिया को नियमित रूप देने की दृष्टि से फौजदारी, दीवानी, राजस्व आदि विभिन्न विषयों से संबंधित कानून की संहिताओं का निर्माण किया गया तथा भारतवर्ष में न्यायालयीन व्यवस्था (कोर्टस सिस्टम) की स्थापना की ।
- विभिन्न तकनीकी एवं विशेषज्ञ विभागों की व्यवस्था की गई और ऐसे कार्यों का कार्यान्वयन करने के लिए जिला स्तरीय अधिकारी पदस्थ किये गये और उन्हें क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व सौंपा गया ।
- देश में आधारभूत आवश्यकताओं जैसे आवागमन के साधन, सड़के, रेल तथा संचार के माध्यम जैसे टेलीग्राफ, तार, टेलिफोन, सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा एवं स्थानीय शासन की संस्थाओं की स्थापना की गई ।[19]

न्यायिक कोर्ट प्रणाली का विकास

अंग्रेजों के पहले भारत में कोई सर्वमान्य व्यवस्थित न्याय प्रणाली उपलब्ध नहीं थी। प्राचीन काल में अधिकांशतः धर्मग्रंथों, स्थानीय परम्पराओं एवं शासकों के न्यायोदाहरणों पर न्याय एवं व्यवस्था आश्रित थी । मुगल काल में काजी, मौलवी, मीर आदिल, दीवानी और फौजदारी निर्णय करते थे जो हिन्दु तथा मुस्लिम कानूनों पर आधारित होते थे । कम्पनी की सरकार के समय न्याय व्यवस्था

19. वही

और खराब हो गई थी । अत: ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट के अधीन भारत का शासन आते ही प्रशासन को व्यवस्थित एवं नियमित करने के लिए कानून तथा विधि विधान की संहिताएं तैयार की गई । भारतीय परिषद अधिनियम 1861 (इंडियन कौंसिल एक्ट, 1861) के पारित होते ही भू-राजस्व एवं भूमि धारण पर (लैण्ड रेवेन्यू एवं टेनेन्सी) संहिताएं बनी और दंड-विधान, दंड प्रक्रिया, दीवानी प्रक्रिया, साक्ष्य आदि पर प्रसिद्ध संहिताएं तैयार हुई ।[20] इस अवधि में तैयार की गई कानून की संहिताओं में सबसे अधिक महत्व रखनेवाली निम्न संहिताएं थी :

भारतीय दीवानी प्रक्रिया संहिता, सन् 1859 (इंडियन सिविल प्रोसीजर कोड, 1859)

1853 में गवर्नर जनरल की भारतीय परिषद के विधि-सदस्य लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में प्रथम विधि आयोग ने इस संहिता का मसविदा तैयार किया था । लार्ड मैकाले 1837 में भारत से वापिस चले गये थे । 1853 में पुन: दूसरे विधि आयोग का गठन हुआ एवं 1859 में इस दूसरे विधि आयोग ने प्रथम विधि आयोग द्वारा प्रस्तावित प्रारूप को पारित कर कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर का निर्माण किया ।[21] इस प्रकार सन् 1858 में पूरे देश में दीवानी

---

20. दुबे, ए० के०, डिस्ट्रिक्ट एडमिनस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, उप्पल पब्लिशिंग हाऊस, पृ० 8-9
21. वही

मामलों को निपटाने के लिए समान रूप से कानून संबंधी प्रक्रिया लागू करने की कार्यवाही की ।

भारतीय दंड विधान संहिता, 1860 (इंडियन पीनल कोडख 1860) यह संहिता भी लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में गठित प्रथम विधि आयोग के प्रारम्भिक प्रारूप पर से, 1837 से 1859 के बीच इंग्लैण्ड में हुए नव वैधानिक/संवैधानिक विकासों को सम्मिलित करके 1860 से कानून पारित कर बनाई गई थी ।[22] इस संहिता का उद्देश्य भी देश में अपराधों के लिए समान रूप से दंड-विधान की व्यवस्था करना था ।

भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1861 (इंडियन क्रिमिनल प्रोसीजर कोड, 1861)

यह संहिता भी उपरोक्तानुसार प्रथम विधि आयोग द्वारा तैयार किये गये प्रारूप को ध्यान में रखकर द्वितीय विधि आयोग द्वारा 1861 में पारित की गई थी । इसका उद्देश्य, देश में अपराधों के लिए विधि-विधान से संबंधित प्रक्रियाएं निर्धारित करना था जो समान रूप से सभी जगह लागू हों ।

भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 (इंडियन पुलिस एक्ट, 1861)

देश में पुलिस की स्थायी, नियमित तथा विधान-सम्मत व्यवस्था करने के बारे में विचार कम्पनी के शासन के शुरु होने के समय से ही चल रहा था । कुछ वर्षों तक मुगलों की "दरोगा प्रणाली" को ही कायम रखा गया था और जमींदारों को पुलिस के अधिकार दिये

---

22. वही

गये थे । जिलों के पुर्नगठन तथा जिले में जिला-कलेक्टर की पद स्थापना के बाद, पुलिस के अधिकार जमींदारों से वापिस लेकर जिला कलेक्टर तथा उनके अधीनस्थ राजस्व अधिकारियों को दे दिये गये थे और फिर कुछ वर्षों तक पुलिस पर नियंत्रण के अधिकार जिला कलेक्टर और जिले के मजिस्ट्रेट के बीच बदलते रहे । अंततः 1854-1858 के बीच जब जिला कलेक्टर को जिला दंडाधिकारी और शासन के प्रमुख प्रतिनिधि का रूप प्रदान किया गया तब पुलिस को भी अंतिम रूप से जिला अधिकारी के मातहत और नियंत्रण में किया गया । सन् 1860 में सरकार ने प्रांतों में पुलिस की स्वतंत्र नियमित व्यवस्था की मांग पर विचार करने के लिए राष्ट्रीय पुलिस आयोग गठित किया था । इस आयोग ने प्रांतों में स्वतंत्र पुलिस विभाग और इसी प्रकार जिला स्पर पर स्वतंत्र जिलाधिकारी बनाने की अनुशंसायें की थी ।[23] इसका उद्देश्य स्वतंत्र पुलिस विभाग की स्थापना और उस पर नियंत्रण एवं उसके आंतरिक कार्यों बावत व्यवस्था का प्रावधान करना था । उसी अधिनियम के तहत जिला स्तर पर जिला पुलिस अधीक्षक के रूप में स्वतंत्र जिला पुलिस अधिकारी की व्यवस्था की गई थी । लेकिन फौजदारी न्याय-प्रशासन एवं कानून तथा व्यवस्था की दृष्टि से उसे जिला दंडाधिकारी/जिला अधिकारी के सामान्य नियंत्रण में रखा गया था ।

इसी अवधि में सरकार ने भारतीय उच्चन्यायालय अधिनियम, 1861 (इंडियन हाईकोर्ट एक्ट) पारित कर कलकत्ता,

---

23. कटारिया सुरेन्द्र, भारत में लोक प्रशासन, ***पूर्वउद्धृत***, पृ० 14-15

बम्बई तथा मद्रास में स्थापित की गई सदर दीवानी और सदर निजामत अदालतें समाप्त कर दी थी और न्याय तथा आपराधिक दोनों प्रकार के मामलों के लिए एक ही अदालत के रूप में नए हाईकोर्ट स्थापित किये थे ।[24] प्रथम: ये हाईकोर्ट बम्बई, कलकत्ता, मद्रास में स्थापित किये गये थे । बाद में उनका विस्तार सभी प्रांतों में किया गया था ।

भारतीय वन अधिनियम 1865

अंग्रेजों को वन-व्यवस्था का कोई अनुभव नहीं था । भारत में वनों की ओर उनका ध्यान कृषि को बढ़ावा देने से अधिक वृक्ष काटने के लिए गया था । साथ ही इमारती लकड़ी का व्यापार तथा किंग्स नेवी के लिए जहाज बनाने के लिए अच्छी लकड़ी की जरूरत से अंग्रेजों ने वनों पर ध्यान दिया था । सन् 1865 में इंडियन फारेस्ट एक्ट पारित कर देश में पहली बार स्वतंत्र बन विभाग की स्थापना की गइ थी और व्यवस्था लागू की गई थी ।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (इंडियन एवीडेंस एक्ट, 1872)

विधि विधान की संहिताओं में दंड एवं प्रक्रिया के निश्चित विस्तृत प्रावधानों के साथ ही सरकार ने अदालतों में चलाये जाने वाले मामलों के लिए "साक्ष्य" के संबंध में पूरे देश में समानता लाने के लिए कानून बनाया था और उसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम के रूप में पारित कर लागू किया था ।

---

24. वही, पृ० 16

भू-राजस्व अधिनियम, 1881 तथा भूमि-धारण अधिनियम, 1883

सन् 1863 के पहले, जिले का भू-राजस्व प्रशासन, बंदोबस्त और लगान वसूली का कार्य, किन्हीं स्पष्ट वैधानिक आधारों पर संचालित नहीं था । प्राचीन परम्पराएं तथा कार्यपालिका निर्देशों से ही काम होता था । सर्वप्रथम बंगाल रेंट एक्ट, 1859 बना था जिसे 1864 में सेंट्रल प्राविन्सेज में भी लागू किया था । राजस्व का सही कानूनी प्रणाली लागू करने के लिए सबसे पहला लेण्ड रेवन्यू एक्ट (अठारहवों 1881) सन् 1881 में पारित किया गया था ।

अकाल संहिता (स्केअरसिटी मेनुअल)

इसी अवधि में देश में अनेक क्षेत्रों में बार-बार अकाल पड़े । सन् 1866 में उड़ीसा में, सन् 1868 से 1897 तक बुंदेलखंड एवं राजपूताना में गंभीर अकाल पड़े । सरकार ने सर हेनरी कैम्पबेल की अध्यक्षता में प्रथम अकाल आयोग स्थापित किया । इसके बाद 1876 में पड़े दुर्भिक्षों की व्यापकता को देखते हुए सरकार ने सन् 1878 में दूसरा अकाल आयोग जनरल रिचार्ड की अध्यक्षता में गठित किया था । इसके बाद सन् 1895 और 1896 में भी देश के अधिकांश भागों में अकाल पड़े ।[25] तत्कालीन गवर्नर लार्ड कर्जन ने ही इन अकाल आयोगों की अधिकांश अनुशंसाएं मानकर कृषि तथा सहकारिता के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण सुधार लागू किये थे । इन्हीं अकाल संहिताओं के माध्यम से सरकार को प्राप्त सुझावों को ध्यान

---

25. शर्मा, जय भगवान हिस्ट्री एण्ड प्राब्लमस ऑफ डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, ***पूर्वउद्धृत***, पृ० 110

में रखकर सरकार ने जिला स्तरीय प्रशासन में महत्वपूर्ण सुधार किये थे ।

भारतीय प्रेस अधिनियम, 1876

सन् 1876 में भारतीय प्रेस अधिनियम पारित कर भारतीय समाचार-पत्रों पर सरकार के विरूद्ध छापने पर अंकुश लगाया था ।

भारतीय शस्त्र अधिनियम, 1878

सन् 1878 में भारतीय शस्त्र अधिनियम बनाकर भारतीयों को बिना अनुमकत के किसी प्रकार के हथियार रखने, खरीदने और बेचने पर प्रतिबंध लगा दिया था ।

कारखाना अधिनियम, 1881

सन् 1881 में लार्ड रिपन के कार्यकाल में भारतीय मिल मजदूरों की स्थिति को सुधारने के लिए कारखाना अधिनियम 1881 लागू किया गया था । औद्योगिक इतिहास में श्रमिक कल्याण की दिशा में यह पहला कदम था ।

स्थानीय स्व-शासन अधिनियम, 1882

सन् 1882 में लार्ड रिपन ने ही भारत में स्थानीय स्व-शासन के अध्याय का शुभारंभ किया था । लार्ड रिपन की मान्यता थी कि प्रत्येक व्यक्ति को एक मानव के रूप में अपने देश की सरकार अर्थात् समस्त कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों और कार्यो में भाग लेने का अधिकार है एवं स्व-शासन राजनीति का सबसे महान और ऊँचा

सिद्धान्त है ।[26] लार्ड रिपन को इसलिए भारत में स्थानीय स्व-शासन का निर्माता कहा जाता है । इसके तहत देश में नगरपालिकाएं, डिस्ट्रिक्ट बोर्डस आदि स्थापित किये गये थे । उत्तरदायित्वपूर्ण राजनीति की दिशा में इस अवधि का सबे महत्वपूर्ण कार्य था ।

को-आपरेटिव्ह सोसायटीज एक्ट, 1904

कृषि विकास के संदर्भ में किए गए भूमि विकास एवं सिंचाई व्यवस्था के साथ ही कृषकों को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराने के लिए सर्वप्रथम 1904 में सहकारी ऋण समिति अधिनियम (को-आपरेटिव्ह क्रेडिट सोसायटी एक्ट) पारित किया गया था ।

विभिन्न विशेषज्ञ विभागों की स्थापना

रेवेन्यू एण्ड जनरल एडमिनिस्ट्रेशन

सर्वप्रथम लगान वसूली के लिए राजस्व विभाग की स्थापना की गई थी । यह सबसे पुराना विभाग है । राजस्व विभाग के मूल ढांच के इर्द-गिर्द ही ब्रिटिश प्रशासन का सारा कार्य संपादित होता था । मुगलकालीन प्रशासनिक इकाईयों और अधिकारियों को ही आधार बनाकर कलेक्टर, सब-डिवीजनल अधिकारी, तहसीलदार, जेलदार, पटवारी और कोटवार रखे गये थे । राजस्व अधिकारियों को मजिस्ट्रेट्स के अधिकार भी दिये गये थे और शुरु में कलेक्टर ही शासन के जिला स्तरीय सभी कार्य खुद करता था ।[27] इसी के साथ सामान्य प्रशासन की व्यवस्थाएं भी की गई थी और राजस्व

---

26. वही, पृ० 23
27. वही

तथा प्रशासन विभाग दोनों का कार्य जिला कलेक्टरों को ही सौंपा गया था । इसलिए प्रारंभ से ही इस विभाग का नाम "रेवेन्यू एण्ड जनरल एडमिनिस्ट्रेशन" के रूप में जाना जाता रहा ।

जिला सत्र न्यायालय

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्रशासन हाथ में लेते ही जिलों के पुनर्गठन और जिला प्रशासन की स्थापना का कार्य किया था । न्याय व्यवस्था बनाने के लिए जिलों में न्यायालयों की व्यवस्था पर भी अपने तरीके से विचार किया था और सन् 1858 तक आते-आते जिलों में स्वतंत्र जिला सत्र न्यायाधीश और उनके मातहत जज तथा मजिस्ट्रेटों की एक स्वतंत्र प्रणाली स्थापित हो चुकी थी । सन् 1860 और 1861 में भारतीय दंड विधान संहिता एवं भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता पारित की जाकर उनमें इन स्वतंत्र न्यायालयों का विधिवत प्रावधान कर दिया गया था ।

पुलिस विभाग का निर्माण

अंग्रेजों के पहले मुगल काल में शांति एवं व्यवस्था रखने का कार्य जमींदारों का था । अत: प्रत्येक जमींदार, पुलिस प्रशासन की एक इकाई जैसा था । प्रत्येक गांव में एक हेडमेन और उसकी सहायता के लिए एक या दो वाचमेन होते थे । वाचमेन रात्रि में गश्त देता था । लोगों की आवक-जावक रखता था और हेडमेन को सूचना देता था । इसके अलावा, सुरक्षा का उत्तरदायित्व सामूहिक रूप से पूरे गांव का होता था । बड़े शहरों में पुलिस-प्रशासन कोतवाल के पास होता था । मुगल शासन के अंतिम दिनों में

पुलिस प्रशासन मृतप्राय हो गया था ।[28] जमींदार अपने इस कार्य के प्रति उदासीन रहे क्योंकि तब पुलिस फौजदारी अदालतों से संलग्न थी और फौजदारी न्याय का कार्य नवाब के हाथों में था । सन् 1772 में वारेन हेस्टिंग्स ने फौजदारी प्रशासन भी हाथ में लेकर लोगों की सुरक्षा व्यवस्था में रुचि दिखाई थी । फिर सन् 1782 में उसने कड़े निर्देश निकाले थे कि सभी जमींदार, चौधरी और ताल्लुकदार अपने-अपने क्षेत्रों में सुरक्षा की व्यवस्था करेंगे । मजिस्ट्रेट के बताए अनुसार स्थानों पर थाने स्थापित करेंगे और थानेदारों के अच्छे बर्ताव तथा कार्य के लिए उत्तरदायी होगें । इस प्रकार नगरों में भी कोई स्वतंत्र पुलिस व्यवस्था नहीं थी । सर्वप्रथम कलकत्ता शहर के लिए लार्ड कार्न वालेस ने अक्टूबर, 1791 में एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट नियुक्त किया था । इसके बाद उसने (दिसम्बर, 1792 को) जमींदारों से पुलिस का कार्य वापिस लिया तथा प्रत्येक जिले को बांटकर, उनमें दरोगा (सुपरिटेन्डेंट ऑफ पुलिस) नियुक्त किये थे। ये दरोगा, जिला दंडाधिकारी के मातहत रखे गये थे । इस प्रकार शांति एवं व्यवस्था का उत्तरदायित्व जमींदारों से जिला दंडाधिकारियों को दिया गया था । जिला दंडाधिकारियों को आदेश दिये गये थे कि वे अपने जिले को कई प्रशासनिक इकाईयों में विभक्त करें व प्रत्येक इकाई में सुपरिन्टेन्डेंट के नीचे कई जूनियर अधिकारी (दरोगा) रखे गये थे और प्रत्येक दरोगा को औसन 20

---

28. शर्मा, सुदेश कुमार, डिप्टी कमिश्नर इन पंजाब, आई० आई०, पी० ए०, नई दिल्ली, पृ० 32

वर्ग मील का प्रभार दिया गया था और उसके नीचे 20 से 50 हथियार लैंस "वरकुनदाज" रखे गये थे । फिर गांवों में सन् 1814 में, "वाचमेन" रखे गये और उन्हें भ दरोगा के मातहत किया गया। सन् 1816 में थामस मुनरों ने कहा था कि 'हमने फिर से अधिकांश स्थानों पर देश की पुरानी पुलिस व्यवस्था कायम कर दी है जिसमें, पैतृक वंशानुगत गांव का चौकीदार (वाचमेन) गांव के प्रमुखों के जिले के तहसीलदार तथा कलेक्टर एवं जिला मजिस्ट्रेट के निर्देशानुसार पुलिस का कार्य करेंगे ।[29] तहसीलदारों का अमला बिना पुलिस या राजस्व के कार्यों में भेद किए इस कार्य में लगाया गया है । सन् 1832 में एक सलेक्ट कमेटी ने यह रिपोर्ट दी थी कि अधीनस्थ अधिकारी भ्रष्ट/अक्षम एवं क्रूर है जबकि वरिष्ठ अधिकारियों के पास कई कार्य होने से उन्हें नियंत्रण के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता । लेकिन सन् 1843 में जब सिंध को अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य में मिलाया तब कहीं सर चार्ल्स नेपियर ने एक नियमित पुलिस बल की संरचना का काम शुरु किया था । सन् 1859 में जाकर पुलिस के कार्यों को राजस्व से स्वतंत्र करने के सुझाव पुलिस आयोग ने दिये थे । तब तक पुलिस प्रशासन, राजस्व प्रशासन का ही एक अंग जैसा था और पुलिस पर नियंत्रण तब तक राजस्व अधिकारियों का ही एक कार्य रहा ।

---

29. कटारिया, सुरेन्द्र, भारत में पुलिस सुधार प्रकृतियों एवं चुनौतियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृ० 88-89

देश में पुलिस को एक नियमित तथा स्थायी रूप देने की दृष्टि से सन् 1860 में भारतीय पुलिस आयोग का गठन किया गया था जिसने स्वतंत्र पुलिस संगठन की योजना प्रस्तावित की थी । इस योजना के अनुसार प्रत्येक प्रांत में पुलिस बल के मुखिया के रूप में एक इंसपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस नियुक्त करने का सुझाव दिया गया था । प्रांत को सुविधाजनक संख्या में रेंजों में बांटने और प्रत्येक रेंज को एक डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ पुलिस के प्रभार में रखने का प्रस्ताव था । जिला स्तर पर प्रत्येक जिले में सुपरिन्टेंडेंट ऑफ पुलिस का पद प्रस्तावित था जो पुलिस विभाग के संगठन और उसके आतंरिक कार्यों के लिए रेंज के डिप्टी इंसपेक्टर जनरल और उसके माध्यम से प्रांत के इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस के अधीन कार्य करेगा ।[30] पुलिस के कार्यों के साथ दांडिक न्याय से संबंधित कर्तव्य भी जुड़े रहेगे और कानून एवं व्यवस्था तथा दांडिक न्याय-व्यवस्था की दृष्टि से सुपरिन्टेन्डेंट ऑफ पुलिस जिला दंडाधिकारी के सामान्य नियंत्रण के कार्य करेगा । इस प्रकार 1861 के अधिनियम 5 के द्वारा प्रान्तीय स्तर से लेकर जिला और उसके नीचे के स्तर तक पुलिस का स्वतंत्र संगठन निर्मित किया गया था जिसमें जिला स्तर पर एक नए जिला अधिकारी के रूप में जिला पुलिस अधीक्षक पदस्थ किया गया था ।

---

30. वही

लोक-निर्माण (1854)

लार्ड डलहौजी के भारत आने से पूर्व (1848 के पूर्व) सड़कों के निर्माण का कार्य सेना के पास था । सन् 1854 में लार्ड डलहौजी ने एक स्वतंत्र सार्वजनिक लोक निर्माण विभाग की स्थापना की थी । सन् 1853-54 में ही मिस्टर नेपियर, जो एक मिलिट्री इंजीनियर थे, के नेतृत्व में यह सार्वजनिक लोक निर्माण विकसित हुआ था ।[31] ग्राम में सड़क, पुल, नहरों आदि का कार्य इसी विभाग के पास रखा गया था ।

वन विभाग (सन् 1865)

पुलिस के बाद सन् 1865 में इंडियन फारेस्ट एक्ट पारित करके देश में स्वतंत्र वन विभाग की स्थापना की गई थी जिसका ढांचा केन्द्र से लेकर नीचे प्राप्त एवं क्रमशः जिलों तक बनाया गया था । यह एक्ट 1868 में संशोधित किया गया था और फिर 1878 में इंडियन फारेस्ट एक्ट (अधिनियम सातवां) लागू कर देश में वन व्यवस्था को सुव्यवस्थित रूप दिया गया था । ब्रिटिश राज में भारत में वन विकास के संबंध में प्रसिद्ध अंग्रेज अधिकारी वर्थोन्ड रिब्बन ट्राप के अनुसार "ब्रिटेन में वनों के प्रबंध की कोई परम्परा नहीं थी।" यूरोपीय अधिकारियों का ज्ञान और अनुभव चिकित्सा विज्ञान (मेडिकल साइंस) का था । हिन्दुस्तान में वन विभाग का शुभारंभ जर्मन लोगों ने किया था । रिब्बन ट्राप जो भारत में इंस्पेक्टर

---

31. दुबे, लीला गुलाम भारत एवं आजाद भारत का जिला कलेक्टर, *पूर्वउद्धृत*, पृ० 32

जनरल ऑफ फारेस्ट थे, प्रसिद्ध जर्मन वन-प्रबंधकों में से थे । वास्तव में हिन्दुस्तान में वन व्यवस्था लागू करने का श्रेय रिब्बन ट्राप को ही जाता है । तब सरकार की नीति कृषि को ही बढ़ावा देने की थी और एक ही नारा था कि कृषि को बढ़ाने के लिए जंगल काटो । लेकिन कुछ ही समय बाद यह अनुभव किया जाने लगा था कि आबादी तथा व्यापार के लिए वनों की घटना गंभीर परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं । सन् 1792 में टीपू सुल्तान की प्रथम हार के साथ ही मलाबार तथा कुर्द, ब्रिटिश कम्पनी के शासन में आ गये थे । 1799 में टीपू सुल्तान की मृत्यु और श्री रंगपट्टन के अंग्रेजों के कब्जे में आ जाने के कारण मद्रास में अंग्रेजों की श्रेष्ठता स्थापित हो गइ थी । इसी समय नागरिक प्रशासन के शांतिपूर्वक चल पड़ने से इमारती लकड़ी की मांग बढ़ गई थी । तब बंगाल और बम्बई प्रांतों के ज्वांइट कमीशन की ओर से इस बात की जांच करने के लिए आदेश दिये गये थे कि मलाबार के जंगल से कतनी इमारती लकड़ी मिल सकती है । इसी संदर्भ में 21 इंच से कम मोटाई की लकड़ी वाले वृक्षों को काटने पर प्रतिबंध लगाया गया था । सन् 1805 में बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की ओर से यह पूछा गया था कि इंग्लैण्ड में हो रही "ओक" लकड़ी की कमी को देखते हुए किंग्स नेव्ही को मलाबार से कितनी लकड़ी स्थायी रूप से नियमित प्रदान की जा सकती है ।[32] परिणामस्वरूप भारत ने तत्काल एक वन-समिति नियुक्त की थी और इसी अवधि में इमारती

---

32. वही

लकड़ियों का मालिकाना हक ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार ने एक घोषणा द्वारा अपने में निहित कर लिया था और अनिाधिकृत रूप से वृक्षों की कटाई पर प्रतिबंध लगा दिया था । एक अधिकारी, जिसे वनों को सुरक्षित रखने और इमारती लकड़ी का अच्छा उत्पादन करने का ज्ञान था, उसे कर्तव्यस्थ अधिकारी नियुक्त किया गया था । सबसे पहला फारेस्ट कंझरवेटर ऑफ इंडिया पुलिस कैपटन वाटसन 10, नवम्बर 1806 को नियुक्त किया गया था । सन् 1823 में यह पद समाप्त कर दिया था । इसके बाद 1865 तक अर्थात् इंडियन फारेस्ट एक्ट लागू किये जाने तक अंग्रेजों द्वारा इमारती लकड़ी के व्यावसायिक उपयोग की दृष्टि से ही वनों का प्रबंध किया जाता रहा और वास्तव में वृक्षों की कटाई पर रोक तथा वनों की अच्छी व्यवस्था की धारणा मेंडिकल साइंस की चेतावनियों के आधार पर जन्मी थी । सन् 1824 में विशप हेबर ने पहली बार शिवालिक हिल्स में की जा रही अत्याधिक कटाई को ध्यान में रखते हुए यह चेतावनी दी थी कि इससे देश में वर्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । 1836 में सर्जन रोनाल्ड मार्टिन एवं सर्जन डोनाल्ड वटन ने, उसके बाद सन् 1839 में एलेक्झेंडर वॉन हम्बोल्ड ने इस आशय पर गंभीर रिपोर्ट प्रस्तुत की थी 'इस प्रकार वनों की कटाई से वर्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने से पूरे विश्व में स्वच्छ जल की उपलब्धि पर प्रभाव पड़ेगा तथा भूमि के शुष्कीकरण की स्थितियां निर्मित हो सकती हैं । अत: उन्होंने जनता के स्वास्थ्य के कार्यक्रमों के तहत वनों के संरक्षण की बात सबसे पहले उठाई

थी । तब अक्टूबर, 1847 में बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स ने सभी प्रेसीडेन्सीज को इस बात की जांच करने के निर्देश दिये गये थे कि अत्यधिक इमारती लकड़ी की कटाई का मौसम पर, देश या जिले की भूमि की उत्पादकता पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ।[33] सबसे पहले बम्बई प्रेसीडेंसी ने डॉक्टर गिब्सन को वनों के संरक्षण के लिए कंझरवेटर फारेस्ट नियुक्त किया । उसके बाद 1865 में मद्रास में डॉ. कलेघोर्न को कंझरवेटर ऑफ फारेस्ट नियुक्त किया गया । तदोपरांत डीइट्च ब्रेडिस ने जो 'पेगू' में सुपरिन्टेन्डंट ऑफ फारेस्ट रहा, हिन्दुस्तान में वैज्ञानिक वन-प्रबंध वृक्षों की गिनती और उनकी व्यवस्था के लिए विभाग की संरचना का मसौदा बनाया था । वह भारत सरकार में विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी था और इसलिए उसके ज्ञान तथा प्रशासनिक अनुभव के कारण उसे देश में वन विभाग की स्थापना के लिए उत्तरदायित्व सौंपा गया था और उसी को भारत सरकार का प्रथम इंसपेक्टर जनरल फारेस्ट होने का श्रेय प्राप्त है । इस प्रकार सन् 1865 से शुरु होकर देश, प्रांत और जिलों में वन विभाग की शाखाएं स्थापित हुई इसके तहत जिला स्तर पर डिप्टी कंझरवेटर ऑफ फारेस्ट (डी.एफ.ओ.) का पद निर्मित हुआ । यहां उल्लेखनीय है कि वनों पर राष्ट्रीय नीति का निर्माण सर्वप्रथम 1894 में हुआ था ।

---

33. दुबे, लीला गुलाम भारत एवं आजाद भारत का जिला कलेक्टर, *पूर्वउद्धृत*, पृ॰ 11

कृषि विभाग

वन के बाद देश में पड़े अकालों के अनुभव से कृषि विकास की ओर ध्यान गया तथा ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए देश में कृषि विभाग की स्थापना की गई। उड़ीसा के अकाल सन् 1866 के गंभीर अनुभवों से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने केन्द्रीय कृषि विभाग की स्थापना पर विचार किया लेकिन यह स्थापना नौ वर्ष बाद सर्वप्रथम 1873 में हुई । सन् 1884 तक लगभग सभी प्रांतों में भी कृषि विभाग स्थापित हो चुके थे ।[34]

ब्रिटिश-भारत में अंग्रेजों का कृषि की ओर ध्यान भी मूलत: उनके व्यापारिक उद्देश्य की पूर्ति के कारण ही गया था । प्रारंभ में लोग ग्रेट ब्रिटेन की कपड़ा मिलों को लगातार कच्चा माल उपलब्ध कराने की दृष्टि से कपास और जूट इत्यादि के उत्पादन के प्रति आकर्षित हुए थे । इसी ब्रिटिश कॉटन इंडस्ट्रीज की ओर से भारत में कृषि विकास की बात सर्वप्रथम उठाई गई थी । इसे बाद में भारत सरकार ने महत्व दिया था । यह एक मनोरंजक इतिहास है कि 1839 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने कपास पैदा करने वाले 12 ब्रिटिश किसान हिन्दुस्तान बुलाये थे ताकि हिन्दुस्तान में कपास उगाने वाले किसान देख सकें कि कपास किस प्रकार उगाई जाती है । 1864 में मद्रास सरकार ने भाप से चलने वाले हल और ऐसे ही कई उपकरण बुलाये थे ताकि किसानों को दिखाया जा सके कि जमीन को कैसे जोता जाता है । जब विदेशी प्रयासों से भारतीय

---

34. शर्मा, सुदेश कुमार, डिप्टी कमिश्नर इन पंजाब, वही, पृ॰ 38

कृषि के अच्छे परिणाम दिखाई नहीं दिये तब अंग्रेजों ने यह तय किया कि भारतीय संदर्भ में ही यहां की कठिनाईयों का अध्ययन कर यहां के लिए उपयुक्त कृषि प्रणालियों को लागू करना चाहिए । 1880 में गठित किये गये प्रथम अकाल आयोग ने कृषि के विकास की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये थे जिन्हें मानकर सरकार ने किसानों को सरलता से ऋण उपलब्ध कराने के लिए "दी लेण्ड एम्प्रूव्हमेंट एक्ट 1883" तथा एग्रीकल्चरिष्ट लोन एक्ट, 1884 पारित किये थे । इसी के तहत कृषि विकास और कृषकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण उपलब्ध कराये गये थे ।[35] इसी अविध में यह भी अनुभव किया गया था कि कृषि में शोध को व्यापक करने तथा कृषि विकास को गति देने का उत्तरदायित्व प्रान्तीय सरकारों को दिया जाना चाहिए ।[36] भारत में कृषि विकास की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम 1889 में उठाया गया था जब रायल एग्रीकल्चर सोसायटी के कंसलटिंग केमिस्ट डॉ. जे.एस. भोयलेकर को भारतीय संदर्भ में कृषि के विकास पर सुझाव देने के लिए कहा गया था । भोयलेकर की रिपोर्ट, एम्प्रूव्हमेंट ऑफ इंडियन एग्रीकल्चर के नाम प्रकाशित हुई थी जिसकी प्रशंसा बाद में नियुक्त किये गये रायल कमीशन आन एग्रीकल्चर ने भी मुक्त कंठ से की थी। तदुपरान्त 1901 में गठित किये गये अकाल आयोग का प्रतिवेदन

---

35. दुबे, लीला और एस० पी०, जिला कलेक्टर-कल आज और कल, शान्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 24
36. वही

भारतीय कृषि के विकास पर महत्वपूर्ण ज्योतिस्तंभ माना जाता है । इस आयोग ने प्रांतों में कृषि विभाग में विशेषज्ञों के अमले को पदस्थ करने की अनुशंसा की थी और क्रेडिट सोसायटीज को भी सुदृढ़ किया गया था । चूंकि ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने व्यापारिक कारणों से कपास की पैदावार पर ज्यादा जोर दिया था, अत: कृषि विकास की दिशा में सबसे पहले-पहल बम्बई प्रांत में हुई थी । सन 1833 में मि. ई.सी. ओसाने को डायरेक्टर नियुक्त किया गया था और 1890 में डॉ. मालिसन को सुप.ऑफ फार्म्स बनाया था जो बाद में भारत सरकार में इंसपेक्टर जनरल ऑफ एग्रीकल्चर नियुक्त किये गये थे । पूना में 1905 में एग्रीकल्चर कॉलेज खोला गया था । मद्रास प्रांत में कृषि की दिशा में रुचि 1876 में ली गई थी । 1906 में कायम्बटूर में एग्रीकल्चर कॉलेज खोला गया था । बंगाल प्रांत में 1871 में ही प्रांत के कई हिस्सों में जिनमें बिहार और असम का भी क्षेत्र शामिल था, 7 आदर्श कृषि फार्म स्थापित किये गये । प्रांत में स्वतंत्र कृषि विभाग 1865 में गठित किया गया था। तदुपरान्त प्रांतों को संभागों में बांटा गया था और प्रत्येक संभाग में एक डिप्टी डायरेक्टर, एग्रीकल्चर पदस्थ किया गया था ।[37] जिला स्तर पर डिस्ट्रिक्ट एग्रीकल्चर ऑफिसर और उनके नीचे अलग-अलग विषयों के विशेषज्ञ नियुक्त किये गये थे । इसी सन् 1889 में एम्पीरियल वेक्टारियल लेबोरेटरी स्थापित की गई थी जो जानवरों की बीमारियों का शोध करने का कार्य करती थी । सन् 1919 में किये

37. वही, पृ० 41

गये संवैधानिक परिवर्तनों के तहत कृषि, पशु धन और सहकारिता के विषयों को प्रान्तों को हस्तान्तरित विषयों के रूप में सौंपा गया था। तब प्रान्तीय सरकारों ने अपने-अपने अनुसार नियम-कानून बनाकर कृषि विकास के कई और कार्य किये थे लेकिन कृषि-विषय प्रांतीय सूची में आने से केन्द्रीय सरकारों की रुचि इसमें कम होने लगी थी और कृषि विभाग बहुत सीमित हो गये थे । अंततः कृषि विभाग को शिक्षा और भूमि विकास के साथ मिला दिया गया था । हिन्दुस्तान में कृषि विकास की दिशा में परिपूर्ण कदम तब उठाया गया जब हिन्दुस्तान में रायल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर रिफार्मसमिस्टर लिनलिथ गो की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया था । इसी आयोग ने पहली बार यह मान्य किया था कि भारतीय कृषि विकास की समस्या वास्तव में भारतीय ग्रामों के जीवन को उन्नत करने की समस्या है। अतः भारतीय ग्रामों का अध्ययन विस्तार से किया जाना चाहिए ।[38] इस आयोग की रिपोर्ट कृषि के लिए अपने समय की सर्वाधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण रिपोर्ट रही है ।

सहकारिता विभाग

अकाल संहिता 1880 के सुझावों से ही जन्मे, को-आपरेटिव्ह सोसायटी एक्ट 1900 के अन्तर्गत देश में क्रेडिट को-आपरेटिव्ह सोसायटियों का गठन शुरु किया था । शुरु में सहकारिता, कृषि विभाग के अन्तर्गत ही रखा गया था ।

---

38. चतुर्वेदी अनिल, डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1988, पृ॰ 79

शिक्षा विभाग

वैसे तो भारत में आधुनिक शिक्षा पर विचार 1772 में ही प्रारंभ हो गया था, लेकिन तब भारत में शिक्षा और विद्यालयों की स्थिति अत्यन्त ही जर्जर थी । शिक्षा के विषय में 1774 में वारेन हेस्टिंग्स ने कम्पनी के संचालकों को एक पत्र लिखा था । 1781 में उसने कलकत्ता में अरबी, फारसी की शिक्षा देने के लिए एक मदरसा स्थापित किया था । उसके बाद सन् 1880 में लार्ड वेलेजली ने कलकत्ता में फोर्ड विलियम कॉलेज की स्थापना की थी । लेकिन इस कॉलेज की स्थापना का उद्देश्य केवल कम्पनी की नागरिक सेवाओं में लगे अधिकारियों को शिक्षा देना था । 1811 में लार्ड मिन्टों ने भारत में स्वायत्त शिक्षा की उपेक्षा पर खेद व्यक्त किया था । यह जानकर आश्चर्य होगा कि सन् 1813 में पारित चार्टर एक्ट के अनुसार भारत में शिक्षा प्रसार के लिए केवल एक लाख रुपए का प्रावधान किया गया था । उसके बाद सन् 1825 में विलियम बेंटिक द्वारा पारित अधिनियम महत्वपूर्ण रहा । इसके बाद भारत में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार और प्रचार का विस्तार दिया गया था । इस समय भारत सरकार में गठित लोक शिक्षा संचालनालय दो भागों में विभक्त था । मैकाले प्रत्येक भारतीय को विचार से अंग्रेज बनाना चाहता था जिससे कम्पनी को सुविधापूर्वक बाबुओं की सेवाएं मिल सकें । इसके बाद सन् 1835 से 1853 तक लगभग बीस वर्षों तक शिक्षा में कोई

खास काम नहीं हुआ ।[39] ब्रिटिश पार्लियामेंट ने कम्पनी का चार्टर बढ़ाने के लिए 1853 में समीक्षा की थी तो बोर्ड ऑफ कंट्रोल के प्रेसीडेंट सर चार्ल्स वुड की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की थी। 14 जुलाई, 1854 का 'बुड्स डिस्पेच' आधुनिक शिक्षा काल का मेगनाकार्टा कहा जाता है । इसके द्वारा अखिल भारतीय आधार पर शिक्षा प्रणाली का गठन किया गया था । वुड्स ने अनुशंसा की थी कि –

1. अच्छी तरह श्रेणीकृत शिक्षा संस्थान होने चाहिए जैसे प्राथमिक शाला, हाईस्कूल, कॉलजे।
2. छात्रवृतियों की नियमित व्यवस्था की जाए ।
3. निजी संस्थाओं को अनुदान दिया जाये ।
4. निरीक्षण की समुचित व्यवस्था के लिए प्रत्येक प्रांत में शिक्षा विभाग स्थापित किया जाए ।
5. कलकत्ता, मद्रास एवं बम्बई प्रत्येक नगर में एक-एक विश्वविद्यालय खोला जाए ।

1857 में बम्बई, कलकत्ता और मद्रास मं विश्वविद्यालय खोले गए । इसके बाद लगातार 50 वर्षों तक भारतीय शिक्षा का तेजी से पाश्चात्यीकरण हुआ । सन् 1882-83 में देश में हुई शिक्षा की प्रगति की समीक्षा करने के लिए हन्टर को नियुक्त किया गया । इसने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर रिपोर्ट दी थी । अगले 20 वर्षों में भारत में शिक्षा का अभूतपूर्व विस्तार हुआ । ये ही वर्ष

---

39. वही, पृ० 77

निजी संस्थाओं के विस्तार एवं विकास के ही वर्ष थे । इसके बाद 1904 में लार्ड कर्जन के कार्यकाल में भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित हुआ । इससे भारतीय विश्वविद्यालयों को अधिक सरकारी नियंत्रण प्रदान किया गया । इसके कारण लार्ड कर्जन को सर्वाधिक लोकप्रियता भी मिली थी ।[40] इसके बाद 1919 में प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित विषय के रूप में 'शिक्षा' मिलने पर प्रांतों में शिक्षा विभाग का सुदृढ़ीकरण हुआ और जिलों में डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स के नाम से जिला स्तरीय अधिकारी नियुक्त किये गये । प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स एवं जनपद सभाओं को सौंपी गई और शासकीय तथा अशासकीय दोनों क्षेत्रों में प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का विस्तार हुआ ।

स्वास्थ्य विभाग

अंग्रेज भारत में व्यापार करने आये थे लेकिन राज्य करने ठहर गये । उन्हें हिन्दुस्तान में विभिन्न भागों की जलवायु एवं मौसम और यहां की बीमारियों के कारण काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । उन्होंने अपने सदस्यों एवं सेवकों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं की सुविधा की व्यवस्था के प्रयास किये थे । अंग्रेज, विज्ञान और मेडिकल साइंस में काफी आगे थे । उन्होंने हिन्दुस्तान में अपनी सेना और अपनी बस्तियों में जिलों के पुर्नगठन के समय

---

40. दुबे, लीला और एस० पी०, जिला कलेक्टर, कल, आज और कल, *पूर्वउद्धृत*, पृ० 29

जिलों में विशेष रूप से अंग्रेज अधिकारियों/कर्मचारियों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए डॉक्टर्स रखे थे ।[41] अधिकांश डॉक्टर्स अन्य सेवाओं के अधिकारियों की तरह सेना के लिए गये थे और उन्हें बाद में अंग्रेजों के अलावा अन्य अधिकारियों/कर्मचारियों और सीमित मात्रा में जनता के स्वास्थ्य के लिए भी कार्य करने को अनाधिकृत किया गया था ।इसी संदर्भ में वे 'सिविल सर्जन' कहलाने लगे थे । जिलों में स्वास्थ्य सेवाओं का अमला जिला मुख्यालय तक ही सीमित था ।

पशु चिकित्सा विभाग

जिलों में इस विभाग का असला भी अधिकांशत: जिला मुख्यालय पर रखा गया था और सेना से लिया गया था ।[42] प्रारंभ में इस विभाग का उद्देश्य अंग्रेज शासकों द्वारा रखे गये जानवरों, घोड़ो, गाय आदि के उपचार तक सीमित था और कभी कभी पशुओं की महामारी से बढ़ती हुई स्थिति को संभालने के लिए विभाग की सेवाएं ली जाती थी ।

1905 से 1947 तक अंग्रेजी शासन काल

सन् 1905 से 1947 तक की लगभग 40 वर्षों की अवधि भारतीय प्रशासन के इतिहास की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अवधि रही है। इसी अवधि में देश में राष्ट्रीय भावना का तेजी से विकास हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन उदारवादी विचारधारा से शुरु होकर उग्रवादी

---

41. वही
42. वही

विचारधारा में बदला था और फिर देश को स्वतंत्रता के जन्मसिद्ध अधिकार की प्राप्ति के लिए तिलक के बाद महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन और पूर्ण स्वराज्य की मांग गुंजाते हुए 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का अभियान चलाया । अन्ततः पूरे देश में जन-जन हृदयों में जलती हुई राष्ट्र प्रेम की आग ने त्याग और बलिदान देते हुए देश को आजादी तक लाया था । इस अवधि में एक ओर जहां सन् 1909 में मिन्टो मार्ले सुधान, सन् 1919 में उत्तरदायी प्रान्तीय शासन और 1935 में प्रान्तीय स्वायत्त शासन के माध्यम से अंग्रेजों ने भारतीयों को क्रमशः शासन और प्रशासन में प्रतिनिधित्व देने की मांगे मानने का प्रयास किया था वहीं दूसरी ओर उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालकर, अनेक काले कानून बनाकर, क्रूरतम ढंग से शोषण और दमन भी किया था ।[43] भारतीय प्रेस एक्ट 1910, राजद्रोह अधिनियम, डिफेंस ऑफ इंडिया एक्ट 1919, रोलट अधिनियम जैसे कठोर कानून बनाकर लागू किये थे ।

यह अवधि जिला कलेक्टरों के लिए वास्तव में एक परीक्षा की घड़ी कही जा सकती है । एक ओर भारतीय जिला कलेक्टर देश के प्रति प्रेम के कारण राष्ट्रीय आंदोलन में जुटे राष्ट्र के महान नेताओं के प्रति हृदयों में श्रद्धा रखते थे, वहीं इंडियन सिविल सर्विसेज के सदस्य होने के नाते कानून के राज्य के प्रति निष्पक्षता और व्यवस्था बनाए रखने के प्रति उनके मन में दृढ़ता भी थी ।

---

43. शर्मा, जय भगवान, हिस्ट्री एण्ड प्रोब्लमस ऑफ डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन-3, ***पूर्वउद्धृत***, पृ० 75

इस प्रकार भारतीय दोहरी मन:स्थिति में थे । जहां तक अंग्रेज कलेक्टरों का प्रश्न है वे ब्रिटिश राज्य को कायम रखने के पूरे प्रयासों में लगे रहे । जन जीवन और सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा के लिए उन्होंने भी कानून और व्यवस्था की गंभीर से गंभीर स्थितियों में साहस का परिचय दिया । जिला कलेक्टर और जिला प्रशासन के लिए इसी अवधि में दो महायुद्धों की विभीषिकाएं भी झेलनी पड़ी थी और उनके कार्यों में पुनर्निमाण, पुर्नवास, सैनिक भर्ती, राशन व्यवस्था, आंतरिक सुरक्षा, चंदा एकत्रीकरण तथा खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के लिए विकास के उपायों जैसे अनेक कार्य जुड़ गये थे । इस अवधि में प्रत्येक कलेक्टर की भूमिका अपने-आप में एक विशेष प्रकार की बन गयी थी । सन् 1930 के समय भारत में जिलों की संख्या 250 थी ।[44] इन सभी जिलों के जिला कलेक्टरों की इस अवधि की भूमिका का अध्ययन-शोध अपने आप में एक रोमांचक कार्य होगा । मद्रास में रहे आय.सी.एस. मिस्टर रोलंड हंट तथा लंदन विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के जान हेरीसन ने अपनी पुस्तक 'दी डिस्ट्रिक्ट ऑफिसर इन इण्डिया' (1930-1940) में इस अवधि के जिला कलेक्टरों की कठिनाइयों का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया है ।

1.5 साहित्य समीक्षा

भारत में जिला प्रशासन व्यवस्था बहुत ही पुराने समय से किसी न किसी रूप में चली आ रही है । वर्तमान शोध

---

44. वही

जिला-प्रशासन से सम्बन्धित है इसलिए शोध कार्य करने से पहले इस शोध में उपलब्ध प्रकाशित तथा गैर प्रकाशित सामग्री की समीक्षा करना उचित होगा ।

सदाशिव[45] ने अपने लेख में जिला प्रशासन के संदर्भ में समन्वय के महत्व को बताया है । जिला प्रशासन व विकास की गतिविधियों की अपरिपक्व समन्वय ऋणात्मक रूप से प्रभावित करता है । वर्तमान समय में जिलाधिकारी की विभिन्न प्रकार के कार्य दिये गये हैं उनमें अतिथियों का स्वागत करना, प्रोटोकोल का ध्यान रखना और विकास के कार्यों को करवाना । इसके अलावा भी बहुत सारे कार्य होते हैं जिनमें जिलाधिकारी को अपना समय देना होता है । बहुत सारी बैठकों की अध्यक्षता करनी होती है और ऊपर से राजनेताओं की भी दखलअन्दाजी होती है । इन सभी के कारण जिले में समन्वय की समस्या उत्पन्न होती है । फलस्वरूप जिला प्रशासन के कार्य प्रभावित होते हैं इस समस्या के समाधन के लिये लेखक ने विशेषज्ञों के द्वारा अनुसन्धान करने की बात कटी है ।

शास्त्री (1956)[46] स्वतन्त्रता के बाद जिला प्रशासन पर यह पहली पुस्तक थी । लेखक ने पुस्तक को पांच अध्यायों में वगीकृत किया गया है । यह पुस्तक जिला प्रशासन में जिलाधीश की स्थिति को उजागर करती है । जिसमें यह कहा गया है कि जिलाधीश

---

45. सदाशिवन, एस॰ एन॰ , "डिस्ट्रिक्ट लेबल काआर्डिनेशन इन इण्डिया," एस॰ एन॰, सदाशिवन, डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन ए नेशनल प्रैस्पक्टिव, आई॰ आई॰ पी॰ ए॰, नई दिल्ली, 1988
46. वही

जिले का मुख्य केन्द्र बिन्दु होता है । वह राजस्व विभाग का भी मुखिया होता है तथा कार्यकारी जिला न्यायधीश है औश्र वह विकासात्मक गतिविधियों को संचालित करने एवं इस सम्बन्ध में तालमेल व मार्गदर्शन के लिये जिम्मेवार होता है ।

खेड़ा (1964) इस पुस्तक में जिला प्रशासन से सम्बन्धित मुद्धों व सुझावों पर बल दिया गया है । जिला के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि जिला क्षेत्र प्रशासन के लिए देश में एक महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में कार्य करता है । जिला एक ऐसी इकाई के रूप में कार्य करता है जो न ज्यादा छोटी है और न ही ज्यादा बड़ी है तथा यह संगठन का एक आसान व सुगम तरीका प्रतीत होता है । जिला देश में सार्वजनिक कार्यों के संचालन का एक आसान तरीका है । जिला प्रशासन नागरिकों तथा सरकार के कार्यों के बीच तालमेल को आधार प्रदान करता है।

शर्मा (1971) इस पुस्तक में मुख्य रूप से जिलाधीश तथा उसके कर्त्तव्यों पर बल दिया गया है तथा उसकी जिला प्रशासन के प्रति जिम्मेवारियों का भी वर्णन किया गया है ।

देव (1980) इस पुस्तक में जिला प्रशासन से सम्बन्धित मुद्दों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है । लेखक ने उपायुक्त की भूमिका को पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में वर्णित किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि पंचायती राज संस्थाओं ने जिला प्रशासन में एक नए युग का सूत्रपात किया है ।

सदाशिवम (1988) इस पुस्तक में लेखक ने जिला प्रशासन का गहन विश्लेषण किया है ताकि जिला प्रशासन की मजबूत व कमजोरियों का पता लगाया जा सके तथा जिलाधीश की लोकतन्त्र के सम्बन्ध में उपयोगिता को निर्धारित किया जा सके । अत: लेखक ने भारत के जिला प्रशासन के मौजूदा ढांचे में बदलाव लाने के लिए एवं उसके वैकल्पिक आकार को अपनाने के सुझाव दिये है।

चर्तुवेदी (1989) यह पुस्तक ब्रिटिश काल एवं वर्तमान जिला प्रशासन व्यवस्था पर प्रकाश डालती है । जिसमें यह कहा गया है कि स्वतन्त्रता से पहले जिला प्रशासन का मुख्य कार्य कानून व्यवस्था बनाए रखना एवं राजस्व इकट्ठा करना था तथा विकासात्मक कार्यों का क्षेत्र काफी सीमित था और जिलाधीश इन कार्यों के लिए पूर्णरूप से जिम्मेवार था लेकिन आज जिला-प्रशासन आम आदमी के लिए जिम्मेवार है और उसे अनेक प्रकार के कार्यों का निर्वहन करना पड़ता है । आज जिलाधीश केवल कानून व व्यवस्था की समस्याओं से ही सम्बन्धित नहीं बल्कि विकास कार्यों में भी इसकी अहम् भूमिका होती है ।

शर्मा (1990) इस पुस्तक में जिला प्रशासन का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है । जहां लेखक ने एक तरफ जिला प्रशासन की कई समस्याओं का वर्णन किया है । वहीं दूसरी तरफ बिहार, राजस्थान व हिमाचल प्रदेश राज्यों तथा जिला शिमला के जिला प्रशासन का साधारण वृतांत को प्रस्तुत किया है । अन्त में जो

कारक जिला प्रशासन को प्रभावित करते है उनकी पहचान करके उन्हें दूर करने के सुझाव दिये है ।

शास्त्री (1990) इस पुस्तक में लेखक ने स्वतन्त्रता के बाद जिला प्रशासन के विकास की स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत की है, अध्ययन जिला प्रशासन की भूमिका, ढांचा व कार्यों तथा समीक्षात्मक पुनरीक्षण को प्रस्तुत करता है तथा उपायुक्त की जिम्मेवारियों को दर्शाता है तथा सभी तरह की परिस्थितियों में उपयुक्त की भूमिका को अहम् मानता है । यह पुस्तक जिला प्रशासन का अच्छा अध्ययन करवाती है ।

दूबे (1995) यह पुस्तक विस्तृत रूप से भारत में जिला प्रशासन से सम्बन्धित है । लेखक ने जिला प्रशासन तथा भूमि व राजस्व प्रशासन का वर्णन किया है । स्वतन्त्रता से पहले भूमि व राजस्व प्रशासन उपायुक्त के मुख्य कार्य होते थे और कई प्रकार के खाद्य वस्तुओं व अनिवार्य उपयोगी वस्तुओं के बारे में प्रतिबंधित आदेश को लागू करने में उपायुक्त की मुख्य भूमि पर प्रकाश डाला गया । अत: यह कहा जा सकता है कि यह पुस्तक मुख्य रूप से उपायुक्त व जिला प्रशासन के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

हजारी (1999) यह पुस्तक जिला प्रशासन के बदलते हुए स्वरूप को प्रस्तुत करती है । प्रशासनिक स्तर पर भारत को संघ, राज्यों, जिलों, उपमण्डलों, खण्डों तथा गांवों में विभाजित किया गया है तथा प्रशासन की क्षेत्रीय इकाई मुख्य रूप से जिला को बताया

है। पुस्तक में जिलाधीश की कई भूमिकाओं पर प्रकाश डाला गया है तथा जिला प्रशासन की जिम्मेवारियों को भी प्रस्तुत किया गया है । अत: हम कह सकते है कि जिला प्रशासन के लिए यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है ।

मिश्रा (2000) इस अध्याय में लेखक ने जिला प्रशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को वर्णित किया है । लेखक ने जिलाधीश की भूमिका का बड़ा ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया है तथा यह कहा गया है कि जिलाधीश जिला स्तर पर राज्य सरकार के प्रतिनिधि के रूप में मुख्य कष्ट निवारण अधिकारी के रूप में कार्य करता है ।

बेदी व श्रीवास्तव (20001) इस लेख में लेखकों ने जिला प्रशासन के एक नए दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है तथा जिला समुदाय को अर्थपूर्ण प्रशासन प्रणाली के लिए एक अच्छी इकाई माना है जो कि लोगों के नजदीक है । इसलिए इसके प्रशासन को लेखकों ने बड़ा ही महत्त्वपूर्ण माना है । यह लेख एक काल्पनिक गांव की कथा से सम्बन्धित है । जिसमें इस तरह के अवसरों का विवरण है कि कैसे जिला प्रशासन इस नये युग में कई तरह की शासन प्रणाली को अपनाता है और कैसे गांवों के लोगों को लाभ होता है और किस प्रकार लोगों के रहन-सहन व तौर तरीकों को उन्नत किया जा सकता है तथा जिला प्रशासन लोगों को जोडने वाला सरकार द्वारा द्वार, आनलाईन उद्यम और आई०टी० काल्स काल्पनिक प्रशासन के लिए, गांव से गांव तक सूचना को बड़े अच्छे तरीके से प्रस्तुत किया गया है, ये सभी नये आयामों को जो कि

जिला प्रशासन से सम्बन्धित है, को बड़े सुन्दर तरीके से प्रस्तुत करते है ।

मिश्रा (2006) इस लेख में जिलाधीश के कार्यालय की भूमिका व जिम्मेवारियों पर प्रकाश डाला गया हैं और यह स्पष्ट किया है कि जिलाधीश की भूमिका में स्वतन्त्रता से अब तक काफी बदलाव आया है । कानून व व्यवस्था तथा राजस्व इकट्ठा करने के साथ-साथ यह कार्यालय एक महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में उभरा है जो केन्द्र व राज्य की नीतियों, योजनात्मक विकास कार्यक्रमों तथा कल्याणकारी कार्यों को अमल में लाने का काम करता है, लेखक ने जिलाधीश के कार्यालय, जिलाधीश व कार्य व जिम्मेवारियों तथा जिलाधीश के सामने आने वाली समस्याओं को भी संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है ।

दत व हूजा (2008) यह पुस्तक भारत में जिला प्रशासन पर आधारित है । जिसमें लेखक ने मुख्य रूप से जिलाधीश की भूमिका को प्रस्तुत किया तथा जिलाधीश की बदलती भूमिका को (1860-1960) के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है ।

1.6 शोध समस्या

साहित्य समीक्षा उपरान्त यह स्पष्ट है कि जिला प्रशासन पर काफी शोध कार्य किया गया है परन्तु कोई भी कार्य आपने आप में अन्तरिम नहीं है क्योंकि समाज एवं उसको प्रशासित करने की व्यवस्था समय एवं आवश्यकतानुसार परिवर्तित होती रहती है। अत: प्रस्तुत अध्ययन इस दिशा में एक प्रयास है ।

प्रस्तुत अध्ययन में जिला प्रशासन की कार्यप्रणाली का विश्लेषणात्मक अध्ययन ऐसे विभागों जिनसे जनमानस का प्रतिदिन वास्ता रहता है । जैसे राजस्व विभाग, स्वास्थ्य विभाग एवं समाज कल्याण विभाग (महिला एवं अनुसूचित जाति से सम्बन्धित), के आधार पर किया जाएगा ।

कार्यप्रणाली का विश्लेषण, जिला प्रशासन के क्षेत्र, कार्य, कार्य निष्पादन प्रक्रिया, यांत्रिकि, उपभोग, योगदान, आपेक्षाएं एवं समस्याओं के आधार पर करके यथोचित्त सुझाव देने को प्रयास किया गया है।

1.7 उद्देश्य

प्रस्तुत शोध जो कि जिला प्रशासन के तीन विभागों (राजस्व विभाग, स्वास्थ्य विभाग एवं समाज कल्याण विभाग) से सम्बन्धित है तथा इन विभागों का अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्य के साथ आयोजित किया गया है ।

1. जिला प्रशासन के चयनित विभागों की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करना ।
2. जिला प्रशासन के चयनित विभागों की कार्य प्रणाली सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करना ।
3. जिला प्रशासन के चयनित विभागों एवं जनता के बीच सम्बन्धों का विश्लेषण करना ।
4. जिला प्रशासन के चयनित विभागों की उपलब्धियों का अध्ययन करना ।

1.8 परिकल्पनाएं

वर्तमान शोध अध्ययन की निम्नलिखित परिकल्पनाएं है -

1. जिला प्रशासन के चयनित विभागों की कार्यप्रणाली जन आपेक्षित नहीं रह होगी ।
2. जिला प्रशासन के चयनित विभागों को कार्य निष्पादन में काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता होगा ।
3. जिला प्रशासन के चयनित विभागों एवं जनता के बीच सम्बन्ध जन केन्द्रित स्वभाव के नहीं रहे होंगे ।
4. जिला प्रशासन के चयनित विभागों की उपलब्धियां अपेक्षा अनुसार नहीं रही होगी ।

1.9 शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन हरियाणा प्रदेश के दो जिलों रोहतक एवं सिरसा में किया गया है । जिलों का चयन उद्देश्यात्मक आधार पर किया गया है । इन दो जिलों का चयन प्रदेश के अलग-अलग क्षेत्रों को वांछित प्रतिनिधित्व करने के लिए किया गया है और दोनों ही जिलों में तीन विभागों, राजस्व विभाग, स्वास्थ्य विभाग एवं समाज कल्याण विभाग (महिला एवं अनुसूचित जाति से सम्बन्धित) का चयन किया गया है ।

जैसा कि समस्या एवं उसके उद्देश्य से प्रदर्शित है कि प्रत्येक चयनित जिले के चयनित विभागों से सम्बन्धित अधिकारी, लाभार्थी एवं विभिन्न राजनैतिक तथा स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों एवं अन्य प्रतिनिधियों से सम्बन्धित विभागों की

कार्यप्रणाली के बारे में साक्षात्कार करके प्रश्नावली के माध्यम से प्राथमिक सूचनाएं एकत्रित की गई हैं । द्वितीय आंकड़ों तथा जानकारियों को प्रकाशित पुस्तकों, लेखों, अभिलेखों पत्रिकाओं इत्यादि से लिया गया है और इन प्राप्त सूचनाओं तथा जानकारियों का विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष एवं सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं ।

1.10 अध्यायीकरण :

प्रस्तुत शोध अध्ययन को छः अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है–

प्रथम अध्याय	:	भूमिका
द्वितीय अध्याय	:	जिला प्रशासन
तृतीय अध्याय	:	राजस्व विभाग
चतुर्थ अध्याय	:	स्वास्थ्य विभाग
पंचम अध्याय	:	समाज कल्याण विभाग
षष्ठम अध्याय	:	निष्कर्ष एवं सुझाव